प्रकाशक—
चौधरी एण्ड सन्स,
पुस्तक विक्रेता तथा प्रकाशक
बनारस सिटी

मुद्रक—
मथुरा प्रसाद गुप्त,
जॉब-प्रेस, करनघंटा
बनारस

छड़ी बनाम सोटा

घटना कलकत्ता के इण्डियन म्यूजियम की है !

सन् १९३८ की ही बात है ! नवम्बर का महीना था। मैं म्यूजियम का क्यूरेटर था और अब भी हूँ। आर्केयोलोजिकल सर्वे नामक पत्र पढ़ रहा था। मोहेन्जोदारो की खुदाई से इस बात का पता चल रहा था कि ईसा के ५००० वर्ष पहिले भारतीय सभ्यता का विकास कहाँ तक हो चुका था ! ५००० वर्ष ! वाह, यह तो काफी लम्बी अवधि है ! उस समय भारत का भी

उन्नतिशील था । तब तो यह निश्चय ही है कि भारतवर्ष में सभ्यता का आरम्भ इससे पहिले ही हो गया रहा होगा। अर्थात् ५००० वर्ष के और भी पहिले भारत सभ्य था।

अब मैं इस बात को उधेड़बुनमें लग गया कि भारत में ५००१ वर्ष बी० सी० (ईसा के पहिले) किस प्रकार की सभ्यता थी।

मैं विचारों के प्रवाह में इतना तन्मय हो रहा था कि अकस्मात् जोर से अपना हाथ सामने की टेबुल पर पटक कर मैं चिल्ला उठा—अयँ, भारतवर्ष में ५००१ बी० सी० में किस प्रकार की सभ्यता थी!

संयोगवश उसी दिन देहरादून के अजायब घर से एक छड़ी और एक सोंटा हमारे कलकत्ता संग्रहालय में भेजे गये थे। ये दोनों अभी मेरे टेबुल पर ही रक्खे हुए थे कि हाथ पटकने से वे दोनों जमीन पर आ गिरे!

मैंने छड़ी और सोंटे को यथास्थान रखते हुए फिर जोर से कहा—लेकिन यह जानने का भी प्रयत्न करना बुरा न होगा कि आज से ५००१ वर्ष बाद यानी ५०३१ ए० डी० में भारत की सभ्यता का क्या रूप हो सकता है ? आर्केलोजिकल विद्या के प्रभाव से यदि यह समस्या भी हल हो जाय तो कितनी सुन्दर बात होगी।

शिला लेखों के अक्षरों को पढ़ने और उनके अर्थ निकालने में मैंने अपनी आँखों पर काफी अत्याचार किया था। संस्कृत

और पाजी के अनेक जटिल श्लोक मार्ग में विघ्न बनकर डण्डा लिए खड़े थे। उन सबके अर्थ मैंने कुछ अपने श्रम तथा कुछ पण्डितों की सहायता से समझने की चेष्टा की थी। बी० ए० में पार्शियन लेकर पास था! बी० ए० के बाद मैंने प्राइवेट तौर पर संस्कृत पढ़ना शुरू किया था। उन दिनों बड़े मजेदार पण्डितों से भेंट हो जाया करती थी। एक पण्डित थे! देशके अच्छे सार्वजनिक कार्यकर्ता भी थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि उन्होंने मुझ नव-सिखुए को उस समय 'कस्तूरीतिलक ललाट पटले' का अर्थ बतलाया था कि 'कस्तूरी (बाई) (लोकमान्य) तिलक को लेकर लाट के पास गयीं और तिलक जी से बोलीं कि पटले याने जो कुछ भी इस समय ये स्वराज्य के नाम पर दे रहे हैं उसे फौरन ले लो!

आखिर लाचार होकर मैंने अपने बल पर ही संस्कृत पढ़ना शुरू किया और धीरे-धीरे उसमें बहुत कुछ सीख चला!

अतएव इस अवसर परभी मैंने यही तय किया कि बिना किसी अन्य विशेषज्ञ की सहायता के मैं भारतीय सभ्यता के भूत और भविष्य का पता लगा कर ही छोड़ूँगा!

दिनभर अन्य कार्यों में व्यस्त रहने से मैं इस विषय को भूल सा गया। रात में चुपके से 'रेनाल्ड' का एक उपन्यास पढ़ते पढ़ते सो गया।

अकस्मात् देखता क्या हूँ कि टेबुल के ऊपर कुछ फुस फुस बातचीत हो रही है। मैंने तिब्बत में एक साधु से पशुपक्षी तथा

निर्जीव वस्तुओं की भाषा का काफी अध्ययन किया था। फलतः मैं कान लगा कर सुनने लगा।

सोंटा कह रहा था—अजी मिस हड्डी जी, जरा इधर तो आइये। बेतरह जाड़ा लग रहा है। तिसपर आज क्यूरेटर साहब की कृपा से, टेबुल से जमीन पर गिर कर चोट भी खा चुका हूँ। मिस हड्डी बोली—वही तो, तुम तो भला गधे की तरह मोटे होने से कम ही चोट खाये होगे यहाँ तो कमर ही टूटी जा रही है। बच्चू चले हैं ६००० वर्ष आगे और पीछे की सभ्यता का पता लगाने! जानते नहीं कि दोनों सभ्यताओं के प्रतीक हम दोनों यहाँ उपस्थित ही हैं।

'हाँ वही तो! बात तो तुम सच कह रही हो। पिछले दस हजार वर्षों से युवक समाज पर हमारा प्रभुत्व रहा है। अब बहुत दिनों तक तुम्हारा प्रभुत्व रहेगा। लोगों के हाथ ही इतने दुर्बल हुए जा रहे हैं कि ये मेरा भार सम्हाल ही नहीं सकते।

सोंटा फिर कहने लगा—बीबी हड्डी, इसमें कोई सन्देह नहीं कि आज कल के कालेज के नौजवानों ने दफ्तरके बड़े बाबुओं तथा दुर्बल हृदय हाकिमों के हाथों में अपनी नाना प्रकार की सखियों के साथ तुम्हारा ही समाज विराजमान है, पर कभी वह युग भी था जब कि भारत के दस दस बारह बारह साल के बालक तुम्हें लेकर कोसों की दौड़ लगाते थे।

यह मैं ६००१ बी० सी० की बात कह रहा हूँ। उस समय

रुपये का दस मन घी बिकता था। आज दस छटाँक शुद्ध घी भी मिल नहीं सकता। मुझे यह भी याद है कि उस समय आजकल की तरह म्युनिस्पल्टियां नहीं थीं। घी के व्यापारियों का कोई डेपुटेशन प्रधानमन्त्री से मिलने नहीं जाता था, फिर भी घी शुद्ध मिलता था। हाँ जी बीबी छड़ी, ऐसा घी कि किसीके घरमें छटाँक भी गर्माया जाय तो गाँव भर में सुगन्ध फैल जाय !

और उस घीके खानेसे उस समय पाणिनी और पतञ्जलि सरीखे मेधावी मनुष्य उत्पन्न होते थे ! सदाचार और ब्रह्मचर्य की चमक से सबके चेहरे लाल रहा करते थे ! और आज तो नर-नारियों की पहिचान तक नहीं रह गयी है !

छड़ी बोली—है क्यों नहीं। जिसे ऊँची एड़ी का जूता पहिने देखो उसे नारी और जिसे नीची एड़ी का पहिने देखो उसे नर मान लो।

सोंटा बोला—हाँ देवी ! ठीक कहती हो ! नहीं मैं तो एक-दम भ्रममें ही पड़ गया था ? खैर उस समय की स्त्रियों की बात सुनो ! वे विदुषी होती थीं। पर जहाँ तक मुझे याद है कि उन लोगों ने कभी अपनी कोई सोसायटी स्थापित नहीं की और न तो उन्होंने कभी कोई प्रस्ताव ही पास किये !

छड़ी ने बीच में ही बात काट कर कहा—तो बुढ़ऊ, इसमें तुम्हें नाराज होने की क्या जरूरत है। अभी उसदिन दिल्ली के महिलासम्मेलन में श्रीमती उमानेहरू ने स्त्रियों के लिए काम-कला

की शिक्षा देने की योजना पेश की है। इस बात की आवश्यकता इन्होंने समझी होगी तभी तो यह प्रस्ताव पास किया होगा।

"हाँ सो तो मैं भी समझता हूँ। सीखें वे लोग काम-कला। मुझसे भी चाहें तो सहायता ले लें। पर हाँ, यह बात ठीक है नहीं। अजी तुम पुराने पोंगापन्थी हो। क्या खबर दलीलें पेश करते हो। इस विज्ञान के युग में तुम सबको प्रगतिशील होने से नहीं रोक सकते। अब घर २ रेडियो है। बेतार का तार है। टेलिफोन है। यह सब था तुम्हारे यहाँ पहिले। पति परदेश गया है। नायिका करवटें बदल रही है। कहीं भौंरों को, कहीं कबूतर को, कहीं बादल को, कहीं नाइन को काल्पनिक अथवा सत्य दूत बना कर भेज रही है। विरह की आग में जली जा रही है। और अब। अब घर बैठे टेलिफोन से बात कर ली। बेतारका तार भेज दिया। यह सब नहीं तो रेलगाड़ी पर चढ़कर स्वयं पतिदेव के निकट जा पहुँची।"

"ऊँह, क्या नाम लिया तुमने। जरा ६००० वर्ष पहिले की बात याद करो। उस समय रेलगाड़ी न थी तो क्या। बैलगाड़ी तो थी। और प्रेम तो भइया विरह से ही पुष्ट होता है। मैं मानता हूँ कि विज्ञान के रेडियो आदि यन्त्रों ने चमत्कार पैदा कर दिया है। ६००० वर्ष बाद ऐसी साइकिलें बनेंगी जिनपर रेडियो, और टेलीफोन भी लगे रहेंगे और स्त्रियाँ उनपर बैठकर हवाखोरी के लिए जाया करेंगी। पति लोग घरों में बैठकर रसोई पकावेंगे और

साथही बोतल के अन्दर पड़े हुए बच्चों को पालेंगे भी, कारण उस समय बच्चे इतने छोटे होंगे कि वे बोतलों में पाले जा सकेंगे। श्रीमती जी बाजार में से ही पूछेंगी—"डियर खाना तयार है ?" उत्तर में पतिदेव कहेंगे—हाँ ! श्रीमतीजी आज्ञा हो तो परोसूँ ?

"तो बुरा क्या है ?" छड़ी बोली" समय परिवर्तनशील है। ५००० वर्षो से पुरुष जाति स्वाधीनता के मजे लेती चली आरही है ! औरतें धुएँ में अपने नेत्र फोड़ें और पुरुष सिनेमा और क्लबों में मजे लूटें ! अब पुरुष जाति के पापों का घड़ा भर गया है ! अब नारियाँ अपना अधिकार वापस लेंगी। ५००१ वर्ष.बी.सी की सभ्यता अब यों ही चीण पड़ रही है, ५००१ ए. डी. में वह ठीक उल्टी हो जायगी और इन दोनों समय की सभ्यता में उतना ही अन्तर हो जायगा जितना कि इण्डिया और इंगलैण्ड, जगत् गुरु शंकराचार्य और मिस्टर जिन्ना तथा चीन और जापान में है ?"

मेरी नींद खुल गयी ! मैं उठ बैठा।

मेरा घर ही प्रदर्शिनी है

भाई महल में सलाह हो रही थी—"उनसे कहो आज प्रदर्शिनी दिखा लावें।" दिनभर के षड्यन्त्र के बाद मेरे छोटे साले साहब श्री गौरांग मोहन सन्ध्या के पाँच बजे मेरे 'रीडिंग रूम' में जलपान की तश्तरी लेकर दाखिल हुए और तश्तरी रखते हुए बोले—जीजा जी, चलियेगा नहीं आज प्रदर्शिनी देखने ! कहिये तो जिया को भी चलने के लिए राजी करूँ।"

यह खूब रही। "जिया को चलने के लिए राजी करूँ।" मानो जिया बिचारी जाना ही नहीं चाहती हैं और उन्हें चलने के लिए राजी करना पड़ेगा। यह वे मेरे ऊपर एहसान करेंगी जो चली चलेंगी।

यद्यपि मुझे सवेरे से ही इस षड़यन्त्र का पता था, फिर भी मैंने अनजान सा बन कर कहा—गौर देखते तो हो, मुझे इस समय जरा भी अवकाश नहीं है! मैं अपने उपन्यासका सातवाँ परिच्छेद समाप्त करने में लगा हुआ हूँ। यदि इस समय चलूँगा तो फिर इस अच्छे ढंगसे यह परिच्छेद लिख न सकूँगा। तुम जाकर अपनी दीदी को राजी कर लो। जाना चाहें लिवा जाओ। मैं तो चल न सकूँगा।

गौरांग कुछ हतप्रभ होकर बोला—तो जब आप ही न जायेंगे तो मैं जाकर क्या करूँगा। और दीदी ही क्यों चलने लगीं। उपन्यास फिर लिख लीजियेगा। प्रदर्शनी में जाने से आप का उत्साह दूना हो जायगा!

यद्यपि गौर ने इसे दूसरे भाव से कहा था, पर मैंने उसकी चुटकी लेते हुए कहा—इसमें क्या सन्देह! उत्साह तो बढ़ता ही है, तभी तो कालेजों के छात्र वहाँ गिद्ध की तरह मँडराते रहते हैं। पर भई, मैं ऐसी इन्स्पिरेशन का आदी नहीं हूँ। फिर मैं तो रोज ही उस प्रदर्शनी से अच्छी प्रदर्शनीघरमें ही देखा करता हूँ।"

गौर का आश्चर्य भरा, प्रश्नसूचक मुखमण्डल देख कर मैंने पुनः कहना शुरू किया—

"देखो गौर, मेरी प्रदर्शिनी कितनी अच्छी है। यहाँ किस बात की कमी है!

दिनभर में पन्द्रह बार पन्द्रह तरह की साड़ियाँ बदल कर जब तुम्हारी दीदी मेरे पास से होकर निकलती हैं, तो मालूम होता है कि बनारसी और अहमदाबादी दूकानों के 'स्टाल' लगे हुए हैं। तुम्हारी दीदी जिस समय मेरे कमरे में आजाती हैं तो मालूम होता है कि एक साथ ही बिजली के दस हजार लट्टू जल उठे हैं। फिर जब वे मेरे किसी परिहास पर नाराज होकर भागने लगती हैं तो ज्ञात होता है कि तिरंगा झगडा फहरा रहा है। लड़के जब मिठाई देने पर भी किंग रोडर पढ़ना छोड़ कर आपस में लड़ते हुए शोर शुरू करने लगते हैं तो यही मालूम होता है कि मुशायरा हो रहा है। लल्लू बाबू जब ललजन की मिठाई छीन लेते हैं, और वह धीरे धीरे फिर जोर से रोने लगता है तो यही मालूम होता है कि बंगाली संगीत-समिति अब संगीत का प्रदर्शन कर रही है! फिर जिस समय तुम्हारी दीदी आकर बच्चों को चटाख पटाख पीटना शुरू कर देती हैं, उस समय साफ मालूम होता है कि आतशबाजी शुरू हो गयी है! उसके बाद जब तुम्हारी दीदी आकर बच्चों के सारे दोषों के लिए मुझे जिम्मेदार बतलाती हुई, अमर कोष के चुने हुए शब्दों से मेरा सम्बोधन करने लग जाती हैं, तो मैं हतबुद्धि और

स्तब्ध होकर यही समझने लगता हूँ कि 'इस समय कवि—सम्मेलन होरहा है और मेरे सामने कोई छायवादी कविता पढ़ी जारही है।

इसी बीच जब तरकारी लेकर दुअरा की माई घर लौटती है, और किनहा बैगन देने के कारण, जिसे बाजार में पहिचानने की बुद्धि उसने खर्च न की थी, कुँजड़े के सात आगे और सात पीछे की पीढ़ियों का श्राद्ध करने लगती है, तो मैं बिना बतलाए ही समझ जाता हूँ कि किसी समाजवादी नेता का भाषण हो रहा है और जीर्ण शीर्ण साम्राज्यवाद का महल अब ढहा चाहता है।

रातमें जब बुड्ढा फेंकू खोंय खोंय २ करके खाँसने लगता है तो मैं समझ जाता हूँ कि लाउड स्पीकर ठीक तरहसे काम कर रहा है। कुत्तों की भों भों मुझे होटल के बैण्ड बाजे से कम सुखद नहीं प्रतीत होती है। रात दस बज जाने परभी जब श्रीमती जी मेरे कमरे के अन्दर नहीं तशरीफ लातीं तो मैं सोचने लगता हूँ कि क्या मेरा कमरा 'कृषि विभाग' तो नहीं है! और—

"अच्छा अच्छा! तुम्हें न जाना हो तो न जाओ! लड़कों के सामने यह क्या ऊल जलूल बक रहे हो? यह क्या डुग्गी पीट रहे हो? किसी प्रदर्शिनी में यह काम, डुग्गी पीटने और नोटिस बाँटनेका कर चुके हो क्या?—कहती हुई श्रीमती जी कमरे में खिल पड़ीं।"

मैं घबड़ा गया। चाहा कि उनके मुखचन्द्र की ओर नेत्र चकोरों को प्रेरित करूँ, पर यह जानकर कि ये इस समय बेहद नाराज हैं, कुर्सी से उठकर स्वागत करने के बजाय, मारे हड़बड़ी के मैं टेबुल के नीचे घुस गया। जब होश हुआ, और बाहर निकला तो देखता हूँ कि भाई बहिन दोनों बेतहाशा हंस रहे हैं।

कवि सम्मेलन।

यदि मुझसे कोई पूछे तो यही कहूँगा कि इस समय संसार में जितने रोग फैले हुए हैं, उन सब में 'कवि-सम्मेलन' नामक रोग सबसे बड़ा है। जहाँ देखिये तहाँ कविसम्मेलन और जब देखिये तब कविसम्मेलन! और रोग तो स्थान और समय के पाबन्द हैं, पर यह कविसम्मेलन नामक रोग जो है सो किसी की परवाह नहीं करता!

चाहे नागरी प्रचारिणी सभा का वार्षिकोत्सव हो या हरिजन संघ का चुनाव, चाहे मिनिस्टर साहब का आगमन हो या पेशकर साहब की विदाई, चाहे शिक्षा सम्राट् का समारोह हो या सोनपुर की पशु-प्रदर्शिनी, चाहे पण्डित मुलई राम का गौना हो या मुंशी घुसई लाल की बरसी, कविसम्मेलन हर अवसर पर एक ही रंग ढंग से पहुँच जाता है।

कविसम्मेलन को न तो गरीब का ख्याल रहता है न अमीर का, इसे न तो महल का विचार है न झोपड़ी का, जब चाहिये और जहाँ चाहिए, इसे कर लीजिये। और सब कार्यों में दिन वार, मुहूर्त आदि का भी विचार होता है, पर कविसम्मेलन इन सबसे परे है।

कवि सम्मेलन में समस्या-पूर्ति एक प्रधान अंग होती है। समस्याओं की पूर्तियाँ भी एक से एक अजीब सुनने में आती हैं। मुझे एक बार ठाकुर चुनमुन सिंह की नतिनी के मुण्डन में एक कविसम्मेलन में सम्मिलित होने का अवसर मिला था। वहाँ की समस्याओं में एक समस्या थी 'गये'। वहाँ काशी के प्रसिद्ध कवि बुलाकीराम भी आये थे। बुलाकी राम जी ने 'गये' समस्या की जो पूर्ति की थी वह यह है—

लड्डू मोतीचूर के मँगाये मैंने पावभर,
सुखद सुगन्ध में वे नासाछिद्र छा गये।

सोचा इन्हें खाऊँगा नहाके, या अभी मैं खाऊँ,
मुख बीच पानी के प्रवाह उमड़ा गये !!
इतने में जाँचने मुकदमा पड़ोस ही में,
मेरे मित्र साधोसिंह थानेदार आ गये !
मेरे अंश में न पड़ा लड्डुओं का खाना क्योंकि,
दानेदार लड्डू सभी थानेदार खा गये !!

एक समस्या थी 'घोड़ा है'।

पंडित बुलाकी राम ने उसकी पूर्तियाँ इसप्रकार की थीं—

भाई, जो गदाई है खुदाई है कभी न वह,
होते हुए दाँत के भी वह दंतखोड़ा है !
नाक होते हुए भी परम नकटा है वह,
पाँव रहते भी वह लँगड़ा निगोड़ा है !
रेस रेशे में हैं बदमाशी उस आदमी के,
जैसे तरकारियों में रेशेदार थोड़ा है !
सधा बधा साधु बनने को वह बना करै,
सुकवि बुलाकी वह गधा है न घोड़ा है।

इसी प्रकार एक सम्मेलन में एक समस्या थी—'होती'। इसकी पूर्ति पण्डित बुलाकी राम ने इसप्रकार की थी—

मैं भला दुनियाँ में करता कौन काम,
साथ में मेरे नहीं जो तुम होती !

छड़ी बनाम सोंटा

नारियाँ घर से निकलती तब नहीं,
एक एक टनके लगी जो तुम होतीं!

कविसम्मेलन का दृश्य बड़ा विचित्र होता है! कहीं मोटे वाले कवि, कहीं मुण्डित मुण्ड महाकवि, कहीं पान से भरे मुँह वाले दर्शक, कहीं चिल्लपों मचाते हुए बालक को चुप करती हुई महिलादर्शक,—ये सब दृश्य सिनेमा जगत् के छायाचित्र से प्रतीत होते हैं।

भगवान् करें भारत में वह समय शीघ्र आवे जब घर घर कवि सम्मेलन हों, और प्रत्येक बालक कवि हो, कारण बिना कवि सम्मेलन हुए नाटक का असली मजा नहीं आता।

कवि की दुर्दशा

हमारे कविजी मिर्जापुर में रहते रहते ऊब गये थे। सोचा, लोग दिलबहलाव और जलवायु-परिवर्तन के लिए बिलाइत तक को दौड़ लगाते हैं, यद्यपि न मालूम भारतवर्ष में कौनसी कमी है, क्या यहाँ अच्छे नदी पहाड़ और गाँव नहीं अथवा यहाँ अच्छे डाक्टर वैद्य हकीम नहीं, फिर भी लोग बिलाइत जाते हैं। तब मैं भी क्यों न कहीं घूम फिर आऊँ।

कविजी थे तो कवि पर, तहसीलदार साहबके इजलासमें पेशकार का काम करते थे। संयोगवश तहसीलदार साहब की बदली गोरख-पुर के लिए होगयी। कविजी ने भी प्रार्थनापूर्वक गोरखपुर चलने का उपाय कर लिया।

लोगों ने कहा—गोरखपुर साक्षात् स्वर्ग है। पर्वतराज हिमालय की तराईमें बसा होने के कारण बड़ा ही पवित्र और रमणीक स्थान है। स्थान २ पर हरे भरे वृक्षों की पंक्ति लहराती रहती है। आप कवि हो। आपके लिये तो वहां कविताके प्राकृतिक और अप्राकृतिक मसाले सभी कुछ उपलब्ध हो सकेंगे।

कविजी ने बीच में ही टोंक कर पूछा—अप्राकृतिक मसाला क्या? बाबू दुर्पेटनदास ने कहा—अरे महाराज धनियाँ, हींग, मेथी मिर्चा, और क्या। आप गरम मसाले तरकारी में नहीं छोड़ते क्या।

शास्त्री जी ने रोका—नहीं नहीं, अप्राकृतिक मसाले से मेरा यह तात्पर्य न था। नाना प्रकार के जीव जन्तु भी आपको वहाँ मिलेंगे, जो एक प्रकारसे प्राकृतिक होते हुए भी अप्राकृतिक ही हैं।

बा० दुर्पेटनदास ने नाराज होते हुए कहा-महराज शास्त्री जी, फिर आपही बताइये कि वे कौन से जीव जन्तु हैं जो प्राकृतिक होते हुएभी अप्राकृतिक हैं?

शास्त्रीजी बोले—बाबू जी, वे हैं मच्छर और निरच्छर, रेता और नेता, दाई और हलवाई, लकड़ी और मकड़ी, खरबूजा और मदमूजा, ताड़ी और मारवाड़ी, धनिया और बनिया—

"बस बस शास्त्री जी-"—बाबू हुरपेटनदास तड़पते हुए बोले आप बेनकेल के ऊँट, बेलगाम के घोड़े, बिना ब्रेक की साइकिल बेपेंदीके लोटा, बे चिमनी की लैम्प, और बे धोबी के गधे की तरह बे हिसाब चले जारहे हैं। आज अधिक भाँग पी ली है क्या?

शास्त्री जी बोले—भाँग, भइया भाँग कहाँ पावैं जो पियें! इ कांगरेस गवर्नमेण्ट के मारे भांग बचने भी पावेगी! हाँ अलबत्ता गोरखपुर में जहाँ कवि जी जा रहे हैं वहाँ भाँग सस्ती है, कारण वहाँ की पृथ्वी ही भाँग-प्रसविनी है। किसीने गोरखपुर रह कर ही लिखा था—'कूप ही में इहाँ भाँग परी है"!

कविजी हैं बड़े ही मस्त आदमी। जब उन्होंने सुना कि गोरखपुर में भाँग सस्ती मिलती है तो वे परम प्रसन्न हुए! बोले—मालूम होता है पर्वतराज हिमालय ने शंकर जी की पहुनई में कोई त्रुटि न होने देने के विचार से ही गोरखपुर की तराई में भाँग की खेती कराई है! सो भइया बड़ा नीक बाटै। भला प्रसाद रूपमें विजया की प्राप्ति तो होत रहिये।

कवि जी से बढ़ कर भाँग के प्रेमी जीव हैं उनके कक्का। वे तो इस समाचार से उछल ही पड़े। बोले—बचऊ, बड़ नीक कीन्हौ! गोरखपुर बदली कराइ लीन्हौ। हमहूँ चलबै। लिआय चलिहौ न!

बेचारे कविजी और उनके कक्का को क्या मालूम कि गोरख-पुर कैसा शहर है। नहीं तो शायद वे लोग इतना अधिक न उछ-

रुते । उन्हें क्या पता कि गोरखपुर इस भारतवर्ष के अन्दर होनोलूलू या मोरक्को से कम सुन्दर स्थान नहीं है।

पर जब कक्का ने यह सुना कि इस बार सिर्फ कविजी ही अकेले २ आ रहे हैं, परिवार अभी मिर्जापुर में ही रहेगा, तो वे ठक से रह गये।

कविजी के साथ उन्हें खाने पीने का बड़ा सुपास रहा करता था। वे रोज दो पैसे की पत्ती छान जाते थे। उसके बाद भोजन के साथ उनके लिए दूध का प्रबन्ध उतना ही जरूरी था जितना कि अंग्रेजों के साथ कुत्ते का रहना या कांग्रेस-मेम्बर होने के लिए चवन्नी चन्दा देना। जिस तरह कांग्रेस का मेम्बर होने के लिए और किसी योग्यता की जरूरत, सिवा इस चवन्नी के नहीं होती, उसी प्रकार कक्का के भोजन में तरकारी, चटनी, मूली और नींबू वगैरह उतने आवश्यक नहीं जितना कि दूध है। पूरी कटोरी का पावभर दूध गले के नीचे उतार कर वे कड़ाही को और उसी प्रकार सतृष्ण नेत्रों से देखते हैं जिसप्रकार बिल्ली पिंजड़े में बन्द चूहे पर, या रेलवे कर्मचारी किसी डेवढ़े दर्जे में अकेली बैठी हुई सुन्दरी युवती को, या मोची, रास्ते में आते जाते हुए लोगों के फटे जूते को।

पावभर दूध पीकर कक्का कहते—चपऊ! इतने दूध से का होत है। इतने में तो कण्ठ सोंच्यों आत है। तोहरी उमर का जब हम रहे तो सवा दो सेर दूध एक साँस में पीकर तब लोटा धरती

पर रक्खत रहे !" मतलब यह कि बिना दूसरी कटोरी का दूध समाप्त किये कक्का उसी प्रकार पीढ़े पर से उठने का नाम नहीं लेते थे जैसे बिना चवन्नी इनाम पाये कलेक्टर साहब का खान-सामा, या बिना अपना नेग लिये हुए नाइन !

तनिक कल्पना तो कीजिये। आपका तिलक चढ़ गया है। परसों आपकी शादी होनेवाली है। कल बारात लेकर आप जाने वाले हैं। अकस्मात् तार आता है—कन्या के चचा का देहान्त हो गया। शादी अगले साल होगी"! बताइये आपके चित्त की दशा ऐसी अवस्था में किस प्रकार की होगी। अथवा किसी नौकरी के लिए आपने आवेदन पत्र भेजा है। कमेटी के सब मेम्बरों ने आपके लिए वचन दिया है। आपको विश्वास है कि नियुक्ति पत्र कल आपको मिल जायगा। इतने में आप अखबारों में क्या पढ़ते हैं कि वह पद ही तोड़ दिया गया ! अब आप का हृदय कुड़बुड़ाहट का अनुभव करेगा या नहीं।

तब भला कक्का को यह जानकर आश्चर्य और दुःख क्यों न हो कि वे इस यात्रा में गोरखपुर नहीं जाने पावेंगे अर्थात् इसबार पता नहीं कि कब तक के लिए उन्हें मिर्जापुर में ही पड़े रहना पड़े। फिर कविजी के गोरखपुर रहने के समय उनके खान पान की ठीक २ व्यवस्था कौन करेगा ? दो चार दिन के लिए भी जब नन्हकू बाहर चले जाते हैं तो कक्का को किसी कमी का अनुभव होने लगता है। दूध उन्हें मिलता है उतना ही अवश्य,

उसके स्वाद में उन्हें किसी प्रकार का भेद मालूम पड़ता है। तरकारी में उन्हें मिर्चे अधिक और घी मसाले कम दिखायी पड़ते हैं, जिसके कारण वे तरकारी दुबारा नहीं माँगते। पता नहीं बचऊ की अनुपस्थिति में तरकारी ही अपना स्वभाव बदल देती है या उसकी बनानेवाली! खैर।

कविजी-गोरखपुर चले गये। वहाँ जाने के साथ ही तहसीलदार साहब के रसोइयाँदार महराज को जूड़ी ने ऐसा दबाया कि उन्हें खाट पकड़नी पड़ी। दूसरा रसोइयाँ कहाँ मिले। वही महराज बनाता था और कविजी भी उसी रसोई में भोजन करते थे। दूसरा सुपात्र ब्राह्मण इतनी शीघ्रता में कहाँ मिले। फलतः कविजी को ही रसोई बनाने का काम स्वीकार करना पड़ा।

तहसीलदार साहब थे तो बंगाली पर थे निरामिषभोजी। मछली छोड़े उन्हें सालों हो गये थे। पर भात वे खूब खाते थे। कविजी को रोटी बनाने नहीं आती थी। वे केवल दाल भात और तरकारी ही बना पाते थे। किन्तु भोजन का अधिक भाग बंगाली महोदय स्वाहा कर जाते थे। एक दिन तो माँग माँग कर वे सभी भोजन चट कर गये।

एक दिन बंगाली महोदय डँट कर भोजन कर रहे थे। छतपर, दूर पर बैठा हुआ एक दीर्घकाय बन्दर टकटकी लगा कर उन्हें भोजन करते हुए देख रहा था। हमारे कवि नन्हकू जी छत के

दूसरे कोने पर चुपके चुपके जा पहुँचे और वहीं से कविता में ही बन्दर से इस प्रकार कहना प्रारम्भ किया।

मेरे बन्दर ! मेरे बन्दर !
क्यों बैठे हो छत के ऊपर !
आ जाओ तुम नीचे भूपर !
घर के अन्दर, मेरे बन्दर !!
मेरे बन्दर तुम कूद पड़ो,
इस दाल भात की थाली पर !
मेरे बन्दर तुम बरस पड़ो,
इस बेवकूफ बंगाली पर !
मेरे बन्दर तुम टूट पड़ो !
इस भयटे की तरकारी पर !
मेरे बन्दर तुम उछल पड़ो !
इस मजदूरनी सोमारी पर !!
जागो बन्दर, मत करो देर !
यह हड़प सभी जाओ बगड़ा !
भागो बन्दर, बुद्वा टेसुआ,
अब आता है लेकर डण्डा !!

पता नहीं बन्दर ने कवि जी की कविता को समझा या नहीं,

पर यह जरूर है कि उसने बंगाली बाबू पर हमला कर ही दिया और दो मुट्ठी भात उठा ले गया!

रात होने पर कवि जी को मच्छर बहुत सताते थे। कुर्सियों में खटमल पड़ गये थे। जिस सड़क पर निकल जाते थे उस कोसों तक कबार ही कबार दृष्टिगोचर होता था। दो तीन बार मलेरिया के हमले का भी सामना करना पड़ा। सुना गाँवों में प्लेग आ गया है! बेचारे की घबड़ाहट की सीमा न थी!

कक्का ने दस दिन तो किसी तरह मिर्चों से भरी तरकारी और विशुद्ध पानी माफ़ो दूध पर काटे, पर अब उनसे न रहा गया। फलतः मुहल्ले के फेंकई लोहार से ५) रु० उधार लेकर आप गोरखपुर के लिये रवाना हो ही तो गये!

कविजी गोरखपुर के जलवायु और वहाँ की रहन-सहन से ऊब कर छुट्टी के लिए दरख्वास्त लिखने जा ही रहे थे कि ठीक ग्यारहवें दिन उनके कक्का उनके सामने सशरीर उपस्थित हो गये! कक्का को देखकर हमारे चरितनायक इतने जोर से चौंके कि चौकी पर से गिरते गिरते बचे! बारे उठकर उनके पैर छुए और बिठला कर हँसते हुए पूछा—"कक्का बड़ी जल्दी कोन्ह्यो? काहें चले आयो!"

कक्का बोले—"बचऊ नन्दकू, पूछो जिन! तुम्हरे बिन तबियतै सपुरी ना लागत रही। एही मारे हम भागि आये!

"नीक कीन्ह्यो कक्का ! पर अभी नहीं आवै चाहत रहा !" कारन हम खुदै इहाँ ते भागन की फिकिर मा हैं।

"काहें काहें बचऊ! कवन विपत परी! कौनो तकलीफ होथै का ?" कक्का ने घबड़ा कर कहा !—'गोरखपुर अच्छा सहर नैखें जनात।" का बचऊ कैसन पायौ ई सहर के।"

कविवर बचऊ ने कहा—

त फिर सुनिहो लेहु—

भन भन भन का निनाद छन छन जहाँ,
    घन की घटा से भी घनविली सघन है।
कार कतवार की बहार सड़कों पै दिव्य,
    बेशुमार बाजों का अजीब अन्जुमन है।
दस रुपयों का कह बेचते दुअन्नी पर,
    ऐसे मोलभाव का महान मधुवन है।
वृन्दावन मच्छरों का, मक्का यह मक्खियों का,
    कक्का यह यू० पी० का अनोखा अपडमन है।

जीजा-जीवनी

सन्ध्या का समय था। पाँच बज चुके थे। स्थानीय नागरी प्रचारिणी सभा का हॉल श्रोताओं से खचाखच भरा हुआ था। सभी की आँखें उत्सुकता से सदर फाटक की ओर लगी हुई थीं। आज पण्डित परमू मिसिर का भाषण होने वाला था। परन्तु मिसिर का भाषण हो और भीड़ न हो। सो भी उनका आज का भाषण एक महत्वपूर्ण विषय पर होने वाला था। उन्होंने बड़े प्रयत्न से महाकवि जीजा के बारे में अनुसन्धान किया है। उनकी कविताओं की एक हस्तलिखित प्रति भी परसू मिसिर पा गये हैं।

आज वे बतलावेंगे कि महाकवि जीजा का हिन्दी-कविता-क्षेत्र में क्या स्थान है !

साढ़े पाँच होगये पर परसू मिसिर न आये ? पाँच ही बजे से उनका भाषण प्रारम्भ होने वाला था। ६ बजते बजते परसू मिसिर अपने अड़ियल घोड़े से संयुक्त सड़ियल इक्के पर विराजमान सभा-भवन के फाटक पर पहुँच ही गये।

भूमिका की कार्य्यवाही हो जाने के अनन्तर पं० परसू मिसिर अपना भाषण देने को उठ खड़े हुए। अब तक जो महान् कोलाहल लोगों के बारम्बार प्रार्थना करने पर भी शान्त नहीं हो रहा था, वह परसू मिसिर के खड़े होते ही एकदम शान्त होगया। कोई जमुहाई लेता तो उसकी आवाज सुनाई पड़ जाती।

परसू मिसिर ने कहा—सज्जनो, आप लोग विलम्ब से आने के कारण मेरे ऊपर मन में बे तरह नाराज हो रहे होंगे। मैं इसे भलीभाँति समझ रहा हूँ, चाहे इसे आप साफ २ कहें या न कहें। क्यों है न यही बात ? अजी आपकी आँखें ही बतला रही हैं कि आप मेरे ऊपर मन ही मन कुड़बुड़ा रहे हैं। पर करूँ क्या, लाचारी थी। एक सज्जन मिलने चले आये थे। उठने का नाम ही न ले रहे थे। गाँव के ही आदमी थे। खैर गाँव हो या शहर सभी जगह कुछ ऐसे महापुरुष होते हैं जो लोक व्यवहार को जानकर भी, तदनुसार आचरण नहीं करते। ऐसे ही महानुभावों को लक्ष्य करके महाकवि जीजा ने यह कुण्डलिया कही है।

पहुना यदि ऐसे मिलें, जिनते होय कलेस।
या तो उन्हें निकारि दै, या खुद छोड़े देस।
या खुद छोड़े देस, क्योंकि ये अति दुख देवैं।
डेरा देवैं धम्मसाद, टरै का नाम न लेवैं।
कवि झीना, तुम ऐसन की संगति में रहना।
पकरि निकारो कान घरं ते ऐसे पहुना॥

सज्जनों! आज मैं आपको इन्हीं महाकवि झीना की जीवनी के सम्बन्ध में कुछ बताने खड़ा हुआ हूँ।

महाकवि झीना ने किस सम्वत् को अपने जन्म ग्रहण द्वारा पवित्र किया, इसका यद्यपि कोई पुष्ट प्रमाण नहीं मिल सका। तथापि यह समझना असंगत न होगा कि ये विक्रम की १९ वीं शताब्दी के उत्तरार्ध यानी १८५० और १९०० के बीच में उत्पन्न हुए थे। महाकवि झीना सन् १९०७ में विद्यमान थे, इसका भी पता मिलता है। ये भारतेन्दु के समकालीन कवियों में थे। भारतेन्दु इनका बड़ा आदर करते थे।

झीना बड़े ही रसिक थे। इन्होंने थोड़ी बहुत अंग्रेजी भी पढ़ी थी। संस्कृत का भी इन्हें अच्छा ज्ञान था। उर्दू और फारसी में भी दखल रखते थे। डीलडौल से लम्बे थे। सिर से दो अंगुल ऊँची गोजी बाँध कर चला करते थे। मुँह में पान भरा रहता था।

कविवर झीना ने तो बनारसी बोली में भी कविताएँ लिखी हैं। ये एक बार परदेश गये। वहाँ इन्हें दो एक महीने रह जाना

जान देते कितने गड़ाँसा से न जान जो तू,
मारवाड़ी वासा के समान गन्दी रहती।

मालूम होता है कि आज ही कल की तरह उन दिनों भी ...रवाड़ी वासा गन्दे हुआ करते थे। मेरा निज का अनुभव तो ...ा बुरा है कि कुछ कहते नहीं बनता। कैसे कोई भलामानस ...ारवाड़ी वासों में भोजन कर लेता होगा।

...जीजा कवि जब विगड़ते थे तो वेतरह विगड़ते थे। किसी ... से रुष्ट होकर वे उसके सात पुश्त तक की खबर लिया करते ...भी २ तो उसकी जाति भर को वे उसके दोषों का जिम्मेदार ...ैठते थे। इनके एक मित्र कान्यकुब्ज ब्राम्हण थे। कहने ... वे ब्राम्हण और पण्डित थे पर कार्य उनके चाण्डालों और ...से थे। कवि जीजा को कई बार उन्होंने धोखा दिया। ...ासघात के अपराध की सजा इन्होंने उसे इस प्रकार दी।

...नते घमण्ड भरे, गनते किसी को नहीं,
द्विजमण्डली में यह बनते नगीने हैं।
...टलों में प्रेम से उड़ाते आमलेट अण्डे,
बाहर पवित्रता की ढोंग में प्रवीने हैं।
... दम्भ दानवों से खूब हैं दबाये गये,
वसन सफेद स्वच्छ, कर्म में मलीने हैं।
...ा कवि' मेरे जान बाइयाँ चुगुलचोर,
... कनौजिया कमीने हैं।

छड़ी बनाम सोटा

तुम अभी कल के अकपर हो।
हम हुमायूँ के बाप बाबर हैं।
तुम अभी हो नमक सुलेमानी,
हम अक्सीर अर्क डाबर हैं।
तुम बिना दुम के एक पिल्ले हो,
हम विलायत के डॉग फाक्सर हैं।

उपर्युक्त कविताओं से महाकवि ओझा के झगड़ालू स्वभाव का भी परिचय मिलता है। अब उनकी विनोद-प्रियता की भी कुछ बानगी देख लीजिए।

महाकवि ओझा के मुहल्ले में एक स्त्री रहती थी। किराये के मकान में वह रहा करती थी। इसलिये जरूरी कामों के लिए उसे अन्यत्र जाना पड़ता था। महाकवि ओझा के मकान के सामने की ही गली में से होकर वह आया जाया करती थी। इन्होंने एक दिन उसके विषय में यह कविता लिख ही तो दी—

आँखों की मरोड़ों से करोड़ों जन होते हत,
हया हवालात में बनी तू बन्दी रहती।
जाती यम्पुलिस क्या पुलिस के बिना ही ऐसे,
लाखों की हो आँखोंसे गयी तू फन्दी रहती।
रूप के भिखारी तेरे बड़े बड़े भूप होते,
इस मञ्जु माधुरी की यों न मन्दी रहती।

जोशा कवि यदि संसार में किसी से डरते थे, तो वे उनकी पत्नी थीं। उनकी पत्नी का नाम तो था कुछ दूसरा, पर वे प्रेम से उन्हें "टिर्री बहू" कहा करते थे। टिर्री बहू वास्तव में थीं भी टिर्री ही! जरा सी कोई बात होती थी कि इनका मुँह फूल उठता था और वे मायके चले जाने की धमकी देने लगती थीं। इसपर कवि जोशा उनसे यों प्रार्थना किया करते थे—

"बारबार आँहें भर, आँखों से बहाके अश्रु,
मेरे इस मौन बीच सरिता बहाना तुम।
करना करोड़ों कर्म क्रूर आततायियों के,
हूण शक सैनिकों सा भले ही सताना तुम।
रूठना मचलना, बिगड़ना और हँसना भी,
इस भाँति नाटक भले ही दिखलाना तुम।
मेरी प्राण प्यारी पर यही तुम टिर्री बहू,
छोड़कर कभी मुझे मायके न जाना तुम।

जोशा कवि अपनी पत्नी से केवल डरते ही थे, सो बात नहीं। वे उसका आदर करते थे, अदब करते थे और करते थे सच्चा प्रेम। एक बार टिर्री बहू बीमार पड़ीं। कवि जोशा लगे दौड़ धूप करने। दिन भर वैद्यों और हकीमों के यहाँ चक्कर लगाते, रात में बैठकर काव्य रचना करते थे। इस समय टिर्री बहू की अवस्था पर इन्होंने अनेक छन्द लिखे थे। उनमें से दस बारह छन्द मेरे पिताजी को

याद थे। मुझे इस समय केवल एक छन्द याद रह गया है। विद्वानोंका मत है कि यही छन्द हिन्दी का प्रथम अतुकान्त छन्द है, और इसी के अनुकरण में निराला छन्द सरीखे छन्दों की सृष्टि हुई।

ओ टिर्री बहू!
बहुत हुआ अब, उठो,
देखो तुम,
पड़ी हुई हो—
खाट पर!
एक सप्ताह से पूरे,
खा रहा हूँ
बाजार की पूरी
उतरता हूँ करहिया घाट!
तुम्हें क्या?
तुम तो यों लेटी हुई
मस्ती ले रही हो जी
पीती हो अनार रस
मकरध्वज खाती हो
शुद्ध मधु से!
और मेरी
धुन्निका समान तोंद

पियक पत्री है वेग,
उठो उठो
हुआ हो तुम्हें है क्या
दासी भली चंगी हो
उठो
श्री दिरीं यह ! !

महाकवि जीजा ने पत्नी पचासा नामक बड़ा ही सुन्दर काव्य ग्रन्थ लिखा था। उसके कुछ छन्द मैं आपको सुनाता हूँ—

"यज्ञ किये जो फल मिले, तीरथ विविध नहाय।
बीबी-पद-वन्दन किये, मिलैं सकल फल धाय॥
रे नर मूढ़ अजानमन, भ्रमत अमित सब ठौर।
बीबी सरनागत बनहु, यासों भलो न और॥
ससुर सास द्वै बीज मिलि, निज सुपुन्य तरु नेक।
'बीबी' फल उपजा रही, निज दमाद हित एक॥

अच्छी पत्नी की प्रशंसा में पत्नी पचासा के अन्दर कवि जीजा ने निम्नलिखित छन्द लिखा है, जो प्रत्येक गृहिणी के लिए कंठस्थ कर रखने लायक है—

सास की ससुर की सुता के सम सेवा करै,
क्रोध का कलेवा करै, अनुराग में रता।

सनद समान राखै ननद सनेह सनी,
देवर को जेवर सदृश मानै महता।
सुर तुल्य ससुर सदैव मानै सतवन्ती,
पति में ही प्रेम से निबाहै निज सत्यता।
काट सकै संकट के कंटक अनेक वह,
ऐसी प्राप्त होवै जिसे पतिव्रता।

साथ ही दुष्ट पत्नी की निन्दा में महाकवि जीजा ने यह छन्द भी लिखा है—

सास को पचास उठि जूतियाँ लगावैं नित,
ससुर तुरन्त सुरपुर है पठाये देत।
नद सी ननद को बहाये देत, एकै वेग,
तेवर सों देवर को दम ही दबाये देत!
असुर समान मान ससुर भगावै भौन,
शार सों सकल ससुरार सहमाये देत।
वर्त ही कराके कर्कसा यों दिनरात हाय,
भरता बिचारे को है भरता बनाये देत॥

कवि जीजा के एक छन्दका यह अन्तिम चरण बहुत प्रसिद्ध है

पति एकमात्र व्रत जिनका पतिव्रता वे,
पति को करावैं वर्त वे ही पतिवर्ता हैं।

अर्थात् जिनके मारे पति लोग भूखे ही रह जाते हैं और इस प्रकार सोलहो दण्ड एकादशीका वर्त (व्रत) रह जाते हैं, वे पतिवर्ता स्त्रियां हैं।

सज्जनों, कवि जीजा के बारे में अभी बहुत कुछ कहना बाकी है, पर काशी की कांग्रेस प्रदर्शिनी में जो कविसम्मेलन होने वाला है, उसका मैं सहकारी सभापति होने वाला हूँ। "अतः आज यहीं तक"—इतना कह कर परसूमिसिर उठकर चलते बने।

प्रोफेसर गड़बड़कर और हिन्दी साहित्य

गोरखपुर की नागरी प्रचारिणी सभा में आज बेहद भीड़ दिखलायी पड़ रही है। कहाँ तो सदस्य लोग बुलवाने से भी नहीं आते थे, कहाँ आज दो घण्टे पूर्व से ही आकर 'सीटों' के लिए मार करते हुए दिखलायी दे रहे हैं। बात यह है कि आज सन्ध्या के ६ बजे से सभाभवन में प्रोफेसर गड़बड़कर का "हिन्दी साहित्य" के ऊपर भाषण होगा। गड़बड़कर जी अभी अभी तिब्बत और चीनी तुर्किस्तान से यात्रा करके लौटे हैं, इसलिए वे यह भी बतलावेंगे कि विदेश यात्रा द्वारा किस प्रकार हिन्दी साहित्य की उन्नति हो सकती है। गोरखपुर वाले बहुत

दिनों से प्रो० गड़बड़कर का नाम सुनते आ रहे थे, वे अच्छी तरह जानते हैं कि महाराष्ट्र होते हुए भी गड़बड़कर जी ने हिन्दी की सेवा का कैसा पवित्र व्रत ले रक्खा है। फिर ऐसी हालत में यदि यह अपार जन-समुद्र उनके मुखचन्द्र के अवलोकनार्थ उमड़ पड़े, तो इसमें आश्चर्य ही क्या।

प्रोफेसर गड़बड़कर के सभाभवन में आने के साथ ही जनता ने खड़ी होकर "प्रोफेसर गड़बड़कर जिन्दाबाद" के नारे लगा कर उनका स्वागत किया। सभापति मुशी परेता लाल बी० ए० एल० एल० बी ने उनकी हिन्दी-सेवाओं का उल्लेख करते हुए कहा कि यह गोरखपुर का भाग्य है कि प्रोफेसर साहब यहाँ पधारे हुए हैं। अब मैं प्रोफेसर गड़बड़कर से प्रार्थना करता हूँ कि वे कृपया अपना व्याख्यान देकर जनता को कृतार्थ करें।"

प्रोफेसर गड़बड़कर ने खाँसते हुए और रूमाल से नाक और चश्मा साफ करते हुए अपना व्याख्यान देना प्रारम्भ किया। वे बोले—महिलाओ और सज्जनो! आज मेरे लिये बड़े हर्ष की बात है कि आप लोगों ने यहाँ पधार कर 'हिन्दी साहित्य' के सम्बन्ध में कुछ जानने की सदिच्छा प्रकट की है। मैंने तिब्बत और चीन। तुर्किस्तान में जाकर 'हिन्दीसाहित्य' की प्रगति के बारे में जो कुछ अनुभव प्राप्त किया है उसे आपको बतलाऊँगा। आपको मालूम होगा कि मैंने इन पिछले पन्द्रह वर्षों में मद्रास, बिलूचिस्तान और रंगून में हिन्दी प्रचार समिति की ओर से हिन्दी का प्रचार

किस हद तक किया है। मद्रास, बिलूचिस्तान और रंगून में हिन्दी प्रचार करने के पश्चात् मुझे इस सद्विचार ने दबाना शुरू किया कि मैं तिब्बत और चीनी तुर्किस्तान जाकर वहाँ भी हिन्दी का झण्डा फहराऊँ। फलतः मैं उन देशों में गया। वहाँ की जनता अब बहुत कुछ हिन्दी के बारे में जानने लग गयी है। मेरी यात्रा के पूर्व वहाँ वाले हिन्दी के विषय में बड़े भ्रम में पड़े हुए थे। उदाहरण के लिए मैं कुछ बातों का आपके समक्ष उल्लेख कर देना आवश्यक समझता हूँ। प्रोफेसर गड़बड़कर जरा स्थूल शरीर के थे और उन्हें दमा की बीमारी भी थी। इसलिये कुछ देर हाँफने के बाद उन्होंने खाँसते खाँसते कहना प्रारम्भ किया— महाशयो, बिलूचिस्तान और चीनी तुर्किस्तान की बात तो जाने दीजिये, हमारे मद्रास और रंगून में हो हिन्दी के प्रति बड़ा भ्रमात्मक ज्ञान फैला हुआ है। यद्यपि हिन्दीसाहित्य सम्मेलन अब तक, अपने जन्म समय से लेकर आज तक, मद्रास में प्रचार कार्य्य ही करता रहा है, परन्तु वहाँ वालों की दशा अभी सुधरी नहीं है। यदि आप में से दो चार नवयुवक वहाँ जाकर कुछ उद्योग करें तो सम्भव है कि वहाँ की दशा में कुछ सुधार हो सके।

हाँ, तो मैं क्या कह रहा था ?

हाँ, मद्रास में मैं एक बार एक सार्वजनिक सभा में हिन्दी भाषा की व्यापकता के सम्बन्ध में भाषण कर रहा था। बीच बीच में जनता में से दो एक व्यक्ति उठकर कुछ प्रश्न भी कर बैठते

थे और मैं भी अपनी योग्यता के अनुरूप उनकी शंकाओं का समाधान करता जाता था। मैंने वर्तमान समालोचना-शैली की चर्चा करते हुए आचार्य पण्डित रामचन्द्र शुक्ल का नाम लिया। इसपर एक मद्रासी सज्जन बहुत प्रसन्न होकर बोल उठे—बस कीजिए साहब बस, उनका नाम मत लीजिए। उन्हें यहाँ कौन नहीं जानता। मद्रास में प्रत्येक हिन्दी प्रेमी उनकी कीर्ति से परिचित है। वही शुक्ल जी न जिन्होंने भाँग पीकर एक ही रात में 'काव्य में रहस्यवाद' नामक ग्रन्थ लिख डाला था।

इसी प्रकार मैं एक बार भक्तिमार्गी कवियों का वर्णन कर रहा था। जनता में से किसी ने पूछा—महाशय आपके लेखकों में कुछ लोग सूत्रपेव भी मानते हैं। वे क्या प्रेममार्गी शाखा के कवि हैं। बा० रामदास गौड़ के लेख पढ़कर हमारी धारणा हिन्दी के प्रति बड़ी घृणित हुई कि हिन्दी से अभी ये कुसंस्कार नहीं मिटे। हमें यह जानकर और भी आश्चर्य हुआ कि पं० गौरी शंकर हीराचन्द सरीखे विद्वान् ओझा हैं।

भाइयो, ये सब ऐसी बातें हैं कि जिनका उत्तर दो ही नहीं सकता। इसके जिम्मेदार हिन्दी के लेखक और कवि ही हैं। उनके नाम और कामही ऐसे हैं कि जिनसे भ्रम का उत्पन्न होना स्वाभाविक है। साथ ही हिन्दी के परिचय ग्रन्थ ही ऐसे हैं कि उनसे भ्रम मिटने के बदले और बढ़ता है। उदाहरण के लिये मिश्रबन्धु विनोद को ही ले लीजिए। इसमें एकही लेखक के

विषय में दो स्थलों पर दो तरह की बातें लिखी हुई हैं। कहीं लिखा है—ये महाशय पटना निवासी श्रीयुत 'क' के सुपुत्र थे। ये बड़े अच्छे ब्रजभाषा-मर्मज्ञ और कवि थे। सम्वत् १८३५ में गंगातट पर इनका अवसान हो गया। इनके लिखे 'कवित्त—कल्पद्रुम' और 'सवैया—शतक' अच्छे ग्रन्थ हैं! फिर इन्हीं लेखक के बारे में दूसरे भाग में, दूसरे स्थल पर यों लिखा है—"ये महाशय श्रीयुत 'क' के लड़के हैं। आज कल बी. ए. में पढ़ रहे हैं। खड़ी बोली में इनकी कविताएं अच्छी होती हैं जो माधुरी में छपती हैं। ये बड़े होनहार मालूम होते हैं।

अब आपही बताइये कि ऐसी हालत में भ्रम कैसे न फैले। मद्रास में एक बार 'हिन्दी प्रचार समिति' की ओर से 'व्युत्पन्न" परीक्षा हो रही थी। मौखिक परीक्षा का परीक्षक मैं ही था। मुझे विद्यार्थियों के ऐसे अद्भुत उत्तर सुनने को मिले कि मैं दंग रह गया। मैंने छात्रों से पूछा—सर्व श्री काशीप्रसाद जायसवाल, जयशंकर प्रसाद, कामता प्रसाद गुरु, सम्पूर्णानन्द, दुलारे लाल भार्गव, राम कुमार वर्म्मा, प्रेमचन्द, सुमित्रानन्दन पन्त आदि के बारे में क्या जानते हो ?

छात्रों के उत्तर इस प्रकार के थे—श्री काशी प्रसाद जायसवाल जायस नगर के रहने वाले थे। उन्होंने अपने पद्मावती चरित्र नामक ग्रन्थ की भूमिका में लिखाभी है—जायस नगर धरम अस्थान्। तहाँ आय कवि कीन्ह बखान्।" बाद में उन्हें वैराग्य

उत्पन्न होगया। तब ये काशी जाकर 'प्रसाद' जी के मकान के पास रहने लगे। इसीसे उनका नाम काशीप्रसाद पड़ गया। पर जन्म-भूमि के अखण्ड प्रेम के कारण उन्होंने अपनी 'जायसवाल' उपाधि का परित्याग नहीं किया।

प्रसाद जी बहुत वर्षों तक सत्यनारायण भगवान का प्रसाद खाकर तब पानी पीते थे, इसी से उनका नाम 'प्रसाद' भी पड़ गया। वे सबसे मिलते समय बड़े प्रेम से 'जयशंकर' कहा करते थे। इसीसे इनका नाम जयशंकर प्रसाद पड़ गया।

जिस विद्यार्थी ने पण्डित कामता प्रसाद गुरु का परिचय दिया, वह बड़ा मेधावी था और दैनिक 'आज' का नियमित पाठक था।

उसने कहा—पण्डित कामता प्रसाद गुरु हिन्दी के अच्छे समालोचक हैं। आप राय बहादुर बा० कामता प्रसाद कक्कड़ के गुरु हैं। इसीसे आपका नाम शिष्य के ही नाम से पड़ गया है। आपने 'व्याकरण मीमांसा' नामक पद्यबद्ध ग्रन्थ लिखा है। ये 'सन्देश' बहुत खाते हैं। कुछ समय तक ये बिहार के मन्त्री बा० श्री कृष्ण सिंह के साथ 'श्री कृष्ण सन्देश' नामक मासिक पत्र भी निकालते थे। इस समय ये जबलपुर में वकालत करते हैं।

"स्वामी सम्पूर्णानन्द हास्यरस के अच्छे लेखक हैं। आजकल ये यू० पी० के शिक्षा मन्त्री हैं। पहले ये टेढ़ीनीम में तपस्या करते थे। वहीं नीम के पेड़ के नीचे इन्हें ज्ञान प्राप्त हुआ। इन्होंने उस ज्ञान को समाज को दान कर देना चाहा। आर्यसमाज में आपने

यह ज्ञान देना चाहा। पर कुछ मतभेद होने से समाज को वह ज्ञान न देकर आपने 'समाजवाद' नामक शतक लिख डाला। शिमलामें अभी आप को पुरस्कार भी मिल चुका है। इन्हें यक्षिणी सिद्ध है।"

"श्री दुलारे लाल भार्गव महर्षि भृगु के वंश में उत्पन्न हुए हैं, ऐसा बहुतों का विश्वास है। कविता संसार में बिहारी के नीचे इन्हीं का स्थान रहेगा! हम उन्हें सिपाही की श्रेणी का कवि समझते हैं।

मैंने पूछा—सिपाही की श्रेणी कैसी जी!

"श्रेणी वगैरह में क्या जानूँ! श्रेणी मिश्र बन्धु लोग बतला सकते हैं। आप लोग इन्हें सेनापति की श्रेणी का मानते हैं।"

अब मुझे ध्यान आया। छात्र ने कविकर सेनापति की भाँति किसी सिपाही कवि की भी कल्पना कर ली थी।

"रामकुमार जी 'वर्म्मा' निवासी हैं।" "प्रेमचन्द बा० धनपतराय के वंश में उत्पन्न हुए थे। ये वेदान्त के अच्छे ज्ञाता थे। वैद्यक में इनका 'कायाकल्प' नामक अच्छा ग्रन्थ है। सेवा सदन नामक इनका उपन्यास अच्छा है। इसके अन्दर इन्होंने महाकवि सूरदास का अच्छा चरित्र चित्रण किया है। ये उर्दू भी जानते थे। "सुमित्रानन्दन पन्त का पूरा नाम है—पण्डित लक्ष्मण प्रसाद। सुमित्रानन्दन इनका कविता का उपनाम है। ये विरह की कवित

लिखने में सिद्धहस्त हैं। इनको 'वीणा' बजाने का अच्छा अभ्यास है।"

सज्जनों! इस प्रकार की धारणाएँ हिन्दी साहित्य के कलाकारों के बारे में मद्रास में फैली हुई हैं। फिर सुदूर पूर्व के देशों की क्या दशा होगी। रंगून में एक बार वहाँ की हिन्दी प्रचार सभा के अध्यक्ष ने मुझसे पूछा—कहिये प्रोफेसर साहब, दादा दालेलकर आज कल क्या कर रहे हैं?" पहले तो मैं समझ ही नहीं सका, बाद में जब गौर किया तो मालूम हुआ कि उनका मतलब काका कालेलकर से था। अब आपही बताइये कि जब हिन्दी के इतने बड़े प्रचारक काका कालेलकर को कोई मामा मालेलकर, नाना नालेलकर या चाचा चालेलकर कहकर याद करे, तो औरों की क्या दशा होगी?

सज्जनों! इसलिए आपलोग इस प्रकार की भ्रान्तियों का निवारण करने के लिए कटिबद्ध हो जाइये। प्रत्येक लेखक और कवि की विशेषताओं का अध्ययन कीजिए और जनता को उन विशेषताओं से परिचित कराकर भ्रामक बातों का निराकरण कीजिए। मैंने स्वयं, महाराष्ट्र होते हुए भी, हिन्दी कवियों की विशेषताओं का अध्ययन किया है। आपके उपकार के लिए मैं उनकी लिस्ट फिर कभी आपको दूँगा। दो एक की विशेषताएँ इसी समय बतला भी देता हूँ। प्रसाद जी दूकान पर नित्य शाम को बैठते थे। हरिऔध जी हर महीने मकान बदला करते हैं।

आज इस मुहल्ले में तो कल दूसरे में। पराड़कर जी गर्मी में चना खाकर और जाड़े में आग तापकर सम्पादन करते हैं! बा० रामचन्द्र वर्म्मा इन्स्पिरेशन के लिए रोज शाम को दशाश्वमेध की सीढ़ियों पर चक्कर लगाते हैं आदि! सज्जनों आप भी इन्हीं "दृष्टिकोणों" से हिन्दी साहित्य का अध्ययन किया करें।

पूरे पाँच हफ्ते के बाद आप गोरखपुर से घर आये हैं। दोपहर के बारह बजे हैं। आप खाना खा कर लेटे हुए श्रीमती जी के आगमन की बाट जोह रहे हैं। ठीक सवा बारह बजे आपकी श्रीमतीजी हाथ में चार बीड़े पान और सुर्ती की डिबिया लिये हुए मस्त हथिनी-की तरह आपके कमरे में प्रवेश करती हैं। आप उनके हाथ से पान लेने जा ही रहे हैं कि इतने में नीचे से आपके मुहल्ले के घुरहू तिवारी चिल्ला उठते हैं—पाँड़े जी, ओ पाँड़े जी ! कहिये कब पधारे ?" आपही बतलाइये कि उस वक्त, अपनी सारी स्कीम को फेल होते देख आपका चित्त, तिवारी जी के प्रति क्रोध का अनुभव किस डिग्री तक करेगा !

खैर, मुकदमे के कागजात टेबुल के ऊपर पटकता हुआ मैं नीचे उतरा। सोचता था शायद मुहल्ले के होमियोपैथ डाक्टर घिराऊ लाल हैं। कारण उनसे अधिक बड़ा बेकार प्राणी मेरे ध्यान में दूसरा कोई न था। पर देखता क्या हूँ कि एक नाटा सा काना आदमी सिर पर मूलियों की एक टोकरी लिये हुए खड़ा है।

कुण्डी खटखटा कर मेरा समय नष्ट करने के कारण मुझे उसके ऊपर बेतरह क्रोध आया। पर मैंने क्रोध दबाकर उसे डाँटते हुए कहा—क्यों बे, क्या है ?

उसने खीस निपोरते हुए अत्यन्त गम्भीर मुद्रा में कहा-मुख्तार साहब मुरई।

मूलियों की एक माला पहिन रक्खी थी उसने। टोकरी के

अन्दर को मूलियां ताजी थीं। उनकी सुन्दर गन्ध वायु में प्रसरित हो उठी। पर उसकी भद्दी शक्ल और बेढंगी पोशाक पर मुझे क्रोध हो रहा था। इसके पूर्व कि मैं उससे दुबारा कुछ कहूँ, वह मुस्कुराते हुए बोला—क्यों मुख्तार साहब आपको मुरई पसन्द है?

पता नहीं क्यों मैं मूली के नामसे चिढ़ता हूँ। पर यह बात अभी बहुतों को नहीं मालूम थी। कहीं यह बात सब पर प्रकट होगयी होती तो मुहल्ले के पाजी लड़के मुझे तंग कर डालते। पता नहीं इस कुँजड़े को मेरे इस स्वभाव का परिचय मिल चुका था या नहीं, हो सकता है किसी जानकार ने उसे सिखला कर भेजा हो, पर यह भी सम्भव है कि यह निर्दोष हो और केवल अपनी चीज बेचने के अभिप्राय से मेरे पास आया हो।

खैर मैंने बात खतम करने के आशय से कहा—कतई नहीं, एकदम नहीं। तुम फौरन यहाँ से भाग जाओ।

यह बोला—बाबू जी, शक न कीजिए! मुरई एक दम ताजी है। अभी २ तोड़ कर ला रहा हूँ। एक टुकड़ा चखकर देखिये न!

मैंने उसे डाँटा—बस, तुम अभी आँखों के सामने से दूर हट जाओ, मुझे किसी भी चीज की जरूरत नहीं है।

वह चला गया। मैंने द्वार बन्द कर लिए! पर इसके पूर्व कि मैं जीने पर चढ़कर ऊपर आऊँ, वह फिर आ पहुँचा और बाहर से पुकार कर बोला—मुख्तार साहब, आप मुरई न खाते होंगे तो घर में तो मुरई खाती होंगी।

मैंने कहा—भागते हो कि पुलिस बुलाऊँ। मेरे यहाँ आज तक ऐसी स्त्री ही नहीं आयी जो मूली खाती हो।

वह फिर लौट गया। पर तुरंत घूमकर बोला—और हुजूर लड़के वाले! वे भी मुरई नहीं खाते क्या?

मैंने उसका कोई उत्तर नहीं दिया! गुस्से में भरकर, दरवाजा भिड़का मैं ऊपर चला आया।

एक सप्ताह बाद!

उसने मूली बेचना बन्द कर दिया था। सवेरे ही वह मेरे पास आया। गिड़गिड़ाकर बोला—हुजूर मुझे कोई काम दें। मेरा खेत नीलाम हो गया। हाल रोजगार कोई नहीं रहा! अब यदि आप अपने यहाँ कोई काम न देंगे तो पेट का भरण पोषण कैसे होगा!"

मैं बोला—काम करेगा! मेरे पास तो कोई खास काम नहीं है। हाँ हमारे बाग का माली बहुत बुड्ढा होगया है और वह दो महीने की छुट्टी भी चाहता है। तुम चाहो तो उसकी जगह काम कर सकते हो। दो महीने बाद काम अच्छा होने पर तुम मुस्तकिल भी किये जा सकते हो!

उसने प्रसन्नता से मेरे पैर पकड़ लिये। बोला—हुजूर लाट हो जावें। मैं बड़ी योग्यता से माली का काम करूँगा।

और वह उस दिन से माली का काम करने लगा। माघ मेला का समय था। श्रीमती जी ने कहा—चलते नहीं, प्रयाग स्नान

कर आवें। विमला भी अपने पति के साथ आने वाली है।

मैंने कहा—विमला के पति की चर्चा न करो! हाँ यदि तुम चाहो तो मैं चला चलूँ।"

और यही हुआ। यद्यपि मैं मेला तमाशा का सदैव से विरोधी रहा हूँ, पर श्रीमती जी को लेकर प्रयाग के लिए रवाना हो गया। विचार तो वहाँ केवल तीन दिन रुकने का था, पर बचपन के एक पुराने साथी मिस्टर सन्तोष कुमार से भेंट होगयी। वे उनदिनों प्रयाग हाईकोर्ट में ही वकालत करते थे। संयोगवशात् उनकी पत्नी मेरी श्रीमती जी की सहपाठिनी निकल पड़ीं।

अब क्या था! पूरे तीन सप्ताह अर्थात् इक्कीस दिन हम लोग प्रयाग में पड़े रहे!

२२ वें दिन सन्ध्या समय हमलोग घर लौटे। बगीचे की ओर गया तो क्या देखता हूँ कि गुलाब के पौधों का पता नहीं। उनके स्थान पर खेत की हरी भरी क्यारियाँ लहलहा रही हैं! हरी हरी पत्तियों का समूह देखकर मैं चौंक पड़ा। मैंने पूछा—क्यों माली! यह सब क्या है! वह दाँत निकाल कर हँसते हुए बोला—

"गुलजार साहब मुर्दई!"

मैं स्तब्ध रह गया। समझ में नहीं आया कि उसको इस होशियारी पर जूते मारूँ या शाबसी दूँ, रोऊँ या हँसूँ।

———*———

आप नहीं कह सकते

मैंने म्युनिसपल बोर्ड के मानपत्र के उत्तर में कहना शुरू किया। मेरे खड़े होते ही तालियों की गड़गड़ाहट ने मेरा स्वागत किया। मैं बोला—चेयरमैन महोदय! हाँ हाँ चेयरमैन शब्द हिन्दी का निजी धन होगया है। यह हिन्दुस्तानी का अच्छा नमूना है!—और, और सदस्यगण अथवा मेम्बर महाशयों! कोई हर्ज नहीं! मेम्बर शब्द भी प्रचलित होगया है! आप जानते हैं और जानती हैं—भई मेम्बर तो कामन जेण्डर का शब्द है और फिर आपमें अब स्त्री मेम्बर भी अनेक हैं। हाँ तो आपने अभी २ अपने मानपत्र में कुछ कहा है। क्या कहा है! हाँ आपकी तनख्वाह कम है! आप पैसे चाहते हैं। आपकी मजदूरी बढ़ा दी जाय! और नहीं तो, नहीं तो आप हड़ताल करेंगे! क्यों यही न! इसलिए इसका यह मतलब हुआ कि आप धमकी दे रहे हैं।

आप चाहते हैं कि आपको बोलने की आजादी दी जाय! पर मैं आपको आजादी न दूँगा। हर्गिज न दूँगा। अरे न दूँगा साहब!

आपको क्या पता कि संसार में ऐसी अनेक बातें हैं, जिन्हें आप जानते हैं, फिर भी नहीं कह सकते। अनेक बातें ऐसी हैं जिन्हें आप कहना चाहते हैं, पर कहने में आप असमर्थ हो जाते हैं। अनेक बातें कहने में आप अपना अपमान समझते हैं।

मान लीजिए आपके कोई मित्र महोदय आपके ठीक जलपान करने के समय आपके पास पहुँच जाते हैं। आप चाहते हैं कि वे न आया करें, पर बोलने की आजादी होते हुए भी आप यह नहीं कह सकते कि 'आप इस समय न आया कीजिए।'

आपके कोई मित्र कवि हैं। वे जबर्दस्ती आपको छन्द के बाद छन्द सुनाये जाते हैं। और आपसे उसकी बारीकियाँ बतला कर उसकी तारीफ भी कराते जा रहे हैं। आपकी इच्छा होती है कि कह दें—"तुम परम लंठ हो। तुम्हारी कविता नितान्त अर्थ-शून्य है। इसमें कोई काफिया ठीक नहीं।" पर आप लाचार हैं। आप ऐसा नहीं कह सकते। 'भलमनसाहत' नामक आर्डिनेन्स आपकी जबान पर लगा हुआ है।

आप गृहस्थ हैं। पत्नी आपसे बीस पड़ती हैं। वे आपको दबाये रहती हैं। कल रात घर में रसोई नहीं बनी। आप आज दिन भर भी टापते रह गये। पर इस बात को आप किसी से नहीं कह सकते।

आप अध्यापक हैं। क्लास में पढ़ा रहे हैं। ओमनी जी का

खत अभी डाक से आया है। चपरासी आपको दे गया है। आपने पढ़ा, पत्नीजी ने एक स्वेटर बुना है, जिसे वे कल पार्सल से भेजेंगीं। आपके चेहरे पर मुस्कराहट खेल जाती है। कोई शरारती लड़का पूछ बैठता है—मास्टर साहब! कहाँ का खत है?" क्या आप ठीक उत्तर दे सकते हैं। इसका उत्तर शायद आप यही देंगे—चलो पचीसवाँ थ्योरम ब्लैक-बोर्ड पर समझाओ।"

आपका कोई मित्र आपके घर आता है। वह पूछता है—कल मैं फिर कब आपके घर आऊँ?" आप कह देते हैं—अजी साहब घर आपका है, जब खुशी हो तशरीफ ले आइये!"—आप जानते हैं कि घर न उनका है न उनके बाप का। उसे आपने ही अपनी सास से वसीयतनामें में पाया है, तथापि सभ्यता के नाते आप कहते हैं—घर आपका है?

आप बच्चों के साथ चौक से टहलकर आरहे हैं। कोई साथी मिल जाता है। वह पूछता है—

"बच्चे किसके हैं?" आप रटी हुई स्पीच की तरह कह डालते हैं—आपही के हैं। यद्यपि यह बात नैतिकता और सचाई के एक-दम विरुद्ध है, फिर भी आप यह सौजन्यवश कह ही डालते हैं। किन्तु!

आपकी पत्नी सिनेमा देखकर रात ११ बजे घर लौट रही थीं। ताँगे वाला शराब पिये हुए था। ताँगा उलट गया। आपकी पत्नी को चोट आयी। थाने तक जाना पड़ा! उनका मनोवेग

जिनमें १५०) के नोट थे राह में ही गिर पड़ा! वे डर के मारे तथा चोट से बेहोश होगयीं। उन्हें लिवाने थाने तक जाना पड़ा। ताँगेवाले का चलान हुआ। आप थाने पर बुलाए गये। थानेदार आपसे पूछता है—महाशय यह आपकी पत्नी हैं ?

आप तपाक से कहते हैं—जी हाँ!"

पहिले की तरह आप नहीं कहते—"आपही की हैं!" क्या आप ऐसा कह सकते हैं ?

आप अपने किसी मित्र को श्रीमान् रामस्वरूप कह कर पुकारते हैं। पूरे नाम के बदले में आप उन्हें केवल श्रीमान जी भी कह सकते हैं। आपके पड़ोस में कोई कार्यकत्री हैं—श्रीमती मीनाक्षी। आप उन्हें श्रीमती मीनाक्षी जी कहते हैं। पर क्या आप उन्हें केवल श्रीमती जी, कह सकते हैं ? बोलिए!

कोई आपसे पूछे—कहिये आपने अपनी बीबी को पीटना बन्द कर दिया ?" आप क्या उत्तर देंगे! "हाँ" ? तो इसके माने यह हुआ कि पहिले आप पीटते थे। "नहीं" ? तो इसके माने यह हुए कि अभी भी आप पीटते हैं, यद्यपि आपने भले ही इसे सदा से अपना उपास्य देवता मान रक्खा हो! अब आप ही बताइये कि आपकी Freedom of speech या बोलने की आजादी कहाँ गयी।

इसीलिये भाइयो! बोलने की आजादी वाली माँग पेश न करो!

द्वितीय खण्ड

कविता-कलाप

कविता कलाप में संगृहीत रचनाएँ महाकवि 'चोंच' की नवीनतम कृतियां हैं। इनमें से कुछ पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी हैं। 'ओ विप्लव के बादल' शीर्षक कविता रायसाहब पण्डित श्रीनारायण चतुर्वेदी की आज्ञा से लिखी गयी थी तथा सर्वप्रथम यू० पी० लेजिस्लेटिव एसेम्बली के सदस्यों की एक साहित्य-गोष्टी में पढ़ी गयी थी, जिनमें स्पीकर टण्डन जी भी थे। वे उक्त कविता पर बेहद हँसे थे।

इस संग्रह की सभी रचनाएँ उत्तम व्यंग्य के सुन्दर नमूने हैं।

प्रकाशक—

स्तुति–

हे सहेली !

बहुत उत्सुक हो रहा हूँ, देखता तुमको निरन्तर ।
तव निरीक्षण कर रहा हूँ, आँख पर चश्मा लगाकर ॥
समझना तुमको कठिन, तुम हो रहीं 'क्रासवर्ड पेपर' ।
बूझ कैसे मैं सकूँ तुमको, न हूँ मैं किंग अकबर ।

बीरबल की हे पहेली !

जब कि अबलाएँ सभी भेड़ी सदृश एकत्र होकर ।
पहिन जूती उच्च एड़ी की मचाती चारु चरमर ।
चल पड़ीं सिनेमा भवन को, कर वदन मञ्जुल मृदुलतर ।
उस समय तुम इस विजन में भर रहीं आहें निरन्तर ।

लेटकर बिल्कुल अकेली !
इस तुम्हारे दृग युगल में विश्व की हिस्ट्री[1] भरी है।
मञ्जुता की, माधुरी की, मोद की मिस्ट्री[2] भरी है।
जो हृदय में है उसी की टिप्पणी इनमें धरी है।
विज्ञ जन के हेतु सब सम्वाद की सूची खरी है।
ये नये अखबार डेली !

पर न कुछ भी जानता मैं, किस तरह पहिचान पाऊँ।
यदि बताओ हो नहीं तो किस तरह मैं जान पाऊँ।
पर बिना जाने हुए भी मैं हूँ उपासक एक भोला।
अन्य अवज्ञाएँ हों भले मिथ्या बताशा और ओला।
हो भली तुम भव्य मैत्री !!
हे सहेली !!

१—इतिहास २—रहस्य

जीजा आये, जीजा आये !!

जब जब जाता श्वसुरालय हूँ,
मन उमंग उल्लसित होता है ।
यह हृदय अतुल उत्साह भरा
अति ही आनन्दित होता है !
"आओ आओ, निज कुशल कहो,
अच्छे तो हो, आये हो कब !
आने की तुमने खबर न दी,—
कहते ये वाक्य, ससुर साहब !
कितने दिन की छुट्टी है जी,
कालेज कब होगा 'री ओपेन्[१] !
तोबा ! कितने दुबले तुम हो,
क्लाइमेट[२] खराब है यह सर्टेन्[३] !"

१—खुलेगा २—जलवायु ३—निश्चय

मुल्लन, लाओ जलपान तुरत
बनवाओ जाकर चाय अभी!
कुछ मँगा समोसे भी लेना,
रखवाओ ये सामान तुरत॥
अम्मा के जब आता समीप,
आती हैं मुन्नी पान लिए!
जलपान कराने आती हैं,
दुनिया भर का सामान लिए!
"दुबले दिखलायी देते हो,
मिजाज या ठीक न खाना क्या,
करते कुपथ्य तुम थे जरूर,
करते हो व्यर्थ बहाना क्या!
कपड़े बदलो जाकर पहले,
है तनिक किया जलपान नहीं।
पानी गरमाये देती हूँ,
ठण्डे से करना स्नान नहीं!!
जब शयन कक्ष में चुपके से,
पत्नी जी का होता प्रवेश!
मैं शीघ्र सम्हल, हो खड़ा मुदित,
करता स्वागत सत्कार वेश!
"जाओ भी, अब तुम आये हो,

उस दिनही थे आने वाले !
मर्दों का क्या विश्वास, कहो,
यों ही हो फुसलाने वाले !
हट बैठो दूर वहाँ जाकर,
ऐसों से करती बात नहीं !
उस दिन कैसी रूठी मैं थी,
क्या भूल गये, है ज्ञात नहीं ?
आइना मँगाकर शक्ल जरा
अपनी यह आप निहारें तो !
हालत क्या है, मोटे इतने
कैसे हो गये विचारें तो !!
साले साहब खाना रखकर
लोटा ।गिलास रख जाते हैं।
पानों में मिस्सी खिला मुझे
फिर मन्द मन्द मुस्काते हैं।
इन ससुर सास साले पत्नी,
सब का व्यवहार अनोखा है।
सब में है प्रेम-प्रभाव भरा,
त्यों रंग सभी का चोखा है !
पर वह आनन्द नहीं मुझको
इन उपालम्भ में आता है।

छड़ी बनाम सोटा

बतलाता हूँ मैं अब उसको,
जो चित्त प्रसन्न बनाता है।
सालियाँ मुदित मन, मुँह बाये
चिल्लाने लगती हैं सदर्प,
जीजा आये जीजा आये॥
इतना आनन्द नहीं देते
मुझको ये सब सुख मन भाये।
जितना साली के शब्द मधुर
"जीजा आये जीजा आये।"

अव्यक्त !

माला है न माली है, न साला है न साली है,
न ताला है न ताली है, न खुला है न बन्द है।
टोपी है न छाता है, न आता है न जाता है,
न रोता है न गाता है, न तेज है न मन्द है।
चोर है न साव है, डोंगी है न नाव है,
न सेर है न पाव है, न काँटा है न फन्द है।
प्रातः है न सन्ध्या है, न गर्भ है न बन्ध्या है,
न पारा है न तारा है, न सूर है, न चन्द है॥
गोंद है न लासा है, न धेगड है न तासा है,
न भाव है न भाषा है, न तुक है न छन्द है।
सोंटा है न छड़ी है, न घड़ा है न घड़ी है,
न फड़ा है न फड़ी है, न फेंटा है न फन्द है।

खाई है न कूप है, न छाया है न धूप है,
न दोरी है न सूप है, न मूस है न कन्द है।
पूस है न माघ है, न छन्द है न घाघ है,
न 'गंग' है न 'भृंग' है, न 'सूर' है न चन्द है ।।

परिचय

गायक हूँ, कुछ गा लेता हूँ।
गीतों का तो हाल न जानूँ,
        हाँ, कुछ रेंक रँभा लेता हूँ।
गायक हूँ, या एक झमेला,
ठेलूँ मैं गायन का ठेला,
जब जब यह जी मचलाता है,
        तब तब मैं मुँह बा लेता हूँ॥
जब उठती उर में स्वर-लहरी,
तान तुरत लेता हूँ गहरी,
धीवी हो जाती है बहरी,
        सिर पर विश्व उठा लेता हूँ॥
गायक हूँ, कुछ गा लेता हूँ॥

स्वागत

पधारो हे कवि-वृन्द उदार!
सुना दो कुछ दोहे दो चार!
वारांगना-विनिन्दक छविमय
दो निज प्रभा पसार!
ग्रामोफोन-कण्ठ से अपने
गा दो गीत मलार!
सुन कर जिसे सभा मण्डप में
गूँज उठे चीत्कार!
हाथ हिलाकर, दृग मटका कर!
मुँह निचका कर, सिर उँचका कर!

अपनेपन का भाव जता कर!
नौटंकी का दृश्य दिखा दो
सफल नर्तनागार!
कितने दूर मकान तुम्हारा,
आये, यह एहसान तुम्हारा!
क्या होगा जलपान तुम्हारा
यह बतला दो यार!
मेला हो या चरखा-दंगल
पशु प्रदर्शिनी, बुढ़वा[1] मंगल
मुण्डन, कनछेदन का कलबल
सब में तुम सम्मिलित सदल बल
टेबुल पर फैला कर पत्तल
खाते हो जब मोदक मगदल
मचता है कवित्व का हलचल
लोग समझते तुमको पागल
पर न उन्हें तुम पागल समझो
हे प्रतिभा-अवतार! पधारो हे कवि-वृन्द उदार!!

---

१ बनारस का एक मेला, जिसमें बनारस के रईस गंगा को छातों पर नावें और बजरे सजा सजाकर उसपर रंडियों को नचाते हैं।

वि र ह-गा न

सूना आज पड़ा है चौका, नहीं धुएँ का नाम।
उदर-दरी में कूद रहे हैं, चूहे बिना विराम॥
आह निराशा की यह रजनी, चढ़ती ही आती है।
पितृ पक्ष की दाढ़ी ऐसी बढ़ती ही आती है॥
भ्रमित चित्त है आह, पकाऊँ रोटी या तरकारी।
ज्ञात न होता मुच्छहीन जन ज्यों नर हैं या नारी॥
तू रहती है बकवादों से कभी न प्यारी सूनी।
थक जाता है तेरे आगे मुझसा भी बातूनी॥
आज अकेला बैठा हूँ, गुम सुम मुंह पर धर ताला।
बिना मुवक्किल का बैठा हो ज्यों वकील मतवाला॥
तू तो चली गयी यों तजकर मुझको अपने नैहर।
यहाँ सताती मुझे निरन्तर यह बरसाती बैहर॥

यद्यपि मुझे न रहने देता है भूखा हलवाई ।
पर उसकी कचौड़ियों का स्टैण्डर्ड[1] बहुत है हाई[2] ॥
उनके संग दशन-सेना से होती रोज लड़ाई ।
पर कितना लड़ पाऊँगा, मैं हूँ न चन्द वरदाई ॥

\+ + + + + +

आजा यहाँ छोड़ हिटलर-हठ, छोड़ पिता का धाम ।
उदर-दरी में कूद रहे हैं, चूहे बिना विराम ॥

---

१ दर्जा २ ऊँचा

उत्सुकता

अम्मा, कब हूँगा मैं लम्बा ।

कितने रोज पिया बालामृत, कितना किया ढिढिम्बा ।
पर न हुआ उतना ऊँचा जितना पानी का थम्बा ।
तू कहती थी लम्बा होगा, होगा तुझे अचम्भा ।
होगा वैसा गड़ा सड़क पर जैसा बिजली-खम्भा ।।
पर खम्भे की कौन कहे, मैं हुआ न ऊँचा डण्डा ।
री मामा ! रख दूर उठाकर यह सब बिस्कुट बण्डा ।।

ओ विप्लव के बादल !

ओ ! विप्लव के बादल !
ओ सिप्लव के बादल !
ओ सावन के बादल !
ओ रावन के बादल !!
रुक जा, ठहर, घहर मत इतना,
हो प्रशान्त !
क्यों अपार
यों प्रहार
करता है धरातल पर ?
रोष दग्ध,

रे विदग्ध !
देख तो तनिक थाह !
गोरखपुर से लखनऊ को
बी० एन० डब्ल्यू रेलवे की राह
रुकी हुई है, है विकट,
मिलता नहीं है टिकट।
ओ अधीर !
चौकाघाट का विराट पुल
गया होता रे कभी का खुल
शठ तेरे कारण ही
जल-प्लावित है मही।
जानता नहीं है तू अरे ओ घन !
राय साहब पण्डित श्री नारायन
चतुर्वेदी,
ओ गगन-भेदी !
करने वाले हैं कल बैठक सम्मेलन की,
जिसपर नहीं तू मानता है अरे ओ सनकी !
देख दोनों ओर सड़कों के हैं नाला निनाद,
हिन्दी काव्य-कानन में जैसे हाला-प्याला-वाद !
लोगों धरातल की आकर्षण शक्ति से आबद्ध,
घोड़े और कोड़े का अनिश्चित हो रहा है युद्ध,

कुछ यों ही

उन्हें 'टन' से मतलब, हमें 'मन' से मतलब,
उन्हें लाख से है, हमें 'वन' से मतलब।
उन्हें हर तरह है सुडेटन से मतलब,
हमें है मुहल्ला भुलेटन से मतलब॥

\+ + + +

हमें है किसी भी न नेशन से मतलब,
न जेकों से मतलब, न जर्मन से मतलब।
हमें हैं नहीं फेडरेशन से मतलब।
फकत हमको अपने नशेमन से मतलब॥

\+ + + +

है ज्यों शायरी के लिये 'पन' जरूरी।
पितरपख में जैसे हैं बाभन जरूरी।

होंगे तेरे वर्णन से सुखी थोड़े से स्टुडेण्ट।
पर रुक जावेगा रे मूढ़ रूरल डेवलपमेण्ट।
भारत के प्रति हो रहा है क्यों तू अनुदार,
क्या तू किसी 'लीग' का कभी था कोई पत्रकार ?
रे लबार ! रे गँवार !
समझा ले निविड़ सोम,
हुआ समाच्छन्न व्योम।
छिपे सूर्य, छिपे सोम !
तू भी सो ले विराम
मेरा तुझे है प्रणाम !
मेरा तुझे है सलाम।
मेरा तुझे राम राम !!

ओ प्रकाम !
ठहर, पहर नहीं, हो गये हैं कई प्रहर,
देख निज आँखों से कि उमड़ी कई नहर,
वेनिस हुआ चाहता है यह लखनऊ का शहर !
अपना यह कार्य्य-क्रम अब भी तो दे बदल,
पानी खो न अपना यों, रुकजा रे ! ओ सजल !
ओ पागल !

ओ विप्लव के बादल !!

कुछ यों ही!

उन्हें 'टन' से मतलब, हमें 'मन' से मतलब
उन्हें लाख से है, हमें 'बन' से मतलब
उन्हें हर तरह है सुडेटन से मतलब
हमें है मुहल्ला भुलेटन से मतलब।

+ + + +

हमें है किसी भी न नेशन से मतलब
न ,जेकों से मतलब, न जर्मन से मतलब
हमें हैं नहीं फेडरेशन से मतलब
फकत हमको अपने नशेमन से मतलब।

+ + + +

है ज्यों शायरी के लिये 'पन' जरूरी
पितरपख में जैसे हैं बाभन जरूरी

छड़ी बनाम सोटा

ज्यों उपवास के बाद पारन जरूरी।
उन्हें हो गया है सुडेटन जरूरी॥
घड़ी को है आवाज 'टन' 'टन' जरूरी,
पकौड़ी बनाने को बेसन जरूरी।
है पहिली को टीचर को वेतन जरूरी।
है पहिली को उनको 'सुडेटन' जरूरी॥

व्यथा—

करूँ मैं अब कैसे अभिसार !
मेढक-वृन्द स्व टर्र टर्र से करता है चीत्कार !
कवि सम्मेलन में गाते हों कवि ज्यों राग मलार !
टार्च बैटरी-हीन हो गया,
अन्धकार है पीन हो गया,
एक अजब है सीन हो गया,
सोऊँ पाँव पसार !
जल की धारा हँटी हुई है,
कीच सड़क से सटी हुई है,
बरसाती भी फटी हुई है,

भीगूँगी लाचार !!
निकट तुम्हारा स्थान नहीं है,
उर में अब अरमान नहीं है,
पनडब्बा में पान नहीं है,
बहुत दूर बाजार !
करूँ मैं अब कैसे अभिसार !!

वीर-काव्य

उठ !

रे मानव !

उर्वरा धरित्री का विशाल वक्षस्थल यह

कम्पित हो,

सुस्मित हो—

तू !

बढ़ रे

यों

जैसे

पितृपक्ष समय

पितृहीन मानव समाज की

दाढ़ी ।
किन्तु अरे !
छील दे तू, फेंक दे तू
शत्रुओं को,
पढ़े लिखे सभ्य छात्र
अप टु डेट
बिना बन्ध
जैसे
ज्योतिष
नक्षत्र वार
या मुहूर्त
के विचार
से रहित सर्वथैव
निज सेफ्टी रेजर में
अपने कपोलस्थ
धस देते !
बस ऐसे
जैसे
सर्वजनिक संस्था बीच
पद अधिकार हेतु
पाकर चुनाव काल

चलते हैं आपस में
पदत्राण !
वीर,
रे मनुष्य !
उठ !!

पते की बातें!

न किस बनारस के रहने वाले—
को भान कर आज 'पेन'[1] होगा।
सड़क पे बिजली की अब जगह पर
चिराग—ए—आलटेन होगा!
ऐ बोर्ड के मेम्बरो! घरों में प्रजा के टैक्सी पढ़ा करो तुम।
बजट रहेगा बना बराबर, न 'लॉस'[2] होगा, न गेन[3] होगा।
सभी समझते थे पहिली तारीख़ से
लड़ाई ज़रूर होगी।
किसे पता था कि इस तरह
'पीस'[4] देने वाला 'ब्रिटेन' होगा!

नोट:—१ दर्द २ नुकसान ३ लाभ ४ शांति स्थापित करने वाला या कुचल देने वाला।

उधर खरे कर रहे हैं नखरे, इधर है यह कांगरेस रूठी।
न कम्प्रोमाइज[1] क्या इन फरीकैन में इलाही एगेन[2] होगा ?
यों 'जेक' का हल हुआ है मसला,
कि आज अल्ला उछल पड़े हम !
सुना है सब्जेक्ट[3] उनकी हसरत—
का जल्द ही मुल्के स्पेन होगा।
ऐ 'चोंच' यह पालिटिक्स[4] है सब,
तुम्हारी यह शायरी नहीं है।
यों आज यूरप की देख हालत,
खराब किसका न 'ब्रेन'[5] होगा !

नोटः—१ मिलाप २ फिर ३ विषय ४ राजनीति ५ मस्तिष्क।

अनुरोध

री प्रेयसि! रूपसि मन्दस्मिते!
केलि-कला-कलिते!
क्यों तू मान किये बैठी है,
महामोद वलिते!
अम्बर-वस्त्र व्यापी कठोर यह
आह! दिसम्बर-जाड़ा।
खट खट हिलते दाँत, गिन रहे—
मानो प्रेम-पहाड़ा!

देख पथिक विरही अपने घर—

हेतु चल पड़े सत्वर!
अन्तरिक्ष में पद्‌त्राण का
गूँजा उनके चरमर!!
देख पटल पर नील गगन के
ऐरोप्लेन चले हैं।
हर हिटलर को आज मनाने
चेम्बरलेन चले हैं।
कामदेव बन्दूक तान कर
मार रहा है गोली।
मैं आऊँगा तुझे मनाने
लिये पालकी डोली।
क्यों न स्पर्श करती अधरों का
प्रेयसि आकर सत्वर।
क्यों अछूत है बना रही,
मैं हूँ सनातनी कट्टर!!
तू ठुकराती ही जाती है
बढ़ा यज्ञ वेदृया में।
तुझे छोड़कर शिमला-सम्मेलन
में नहीं गया मैं!!
स्वीकृत क्यों न आप करते हैं
तेरे आह! उन्वादा!

क्यों न दुःख वे समझें मेरा,
क्यों वे गत-मर्य्यादा !!
कब तक रहूँ बजाता प्यारी
विरह बैण्ड का बाजा ?
अब तो नहीं सहा जाता है,
आजा, आजा, आजा !!

एकता और अनेकता

(अंग्रेजी ट्यून पर)

एक रंग सप्त रंग, सप्त रंग एक रंग,
एक में अनेक, औ अनेक एक !
धान हरित पान हरित, साग हरित, बाग हरित,
हरित स्थान इक।
हरित पत्र 'भंग' ।
सेण्ट पीत, टेण्ट पीत,
हेमका है क्रेम पीत,
पीली मूंग-दाल ।
हाँग्हो नदी सिक्त धरा पीत,

छड़ी बनाम सोटा

पीले पड़े ग्रेजुएट के गाल।
कुली काले, कोल[१] काला,
काले रेल-कर्मचारी ड्रेस[२]।
काली देसी मेम।
काली गोल मिर्च !!
लाल सुरा, लाल सीरा, लाल है गुलाब जामुन,
क्लीन[३] शेव्ड[४] लाल हैं कपोल।
लाल अफसरों की आंख।
बाल धवल, 'बाल' धवल,
साबुन की झाग धवल,
धवल गाँधी कैप !
धवल है खरगोस !
धवल मिस्टर बोस
धवल बुड्ढे के बाल !!
एक रंग सब रंग, सब रंग एक रंग,
एक में अनेक, औ अनेक एक !!

नोट:—१ कोयला २ वस्त्र ३ स्वच्छ ४ सफाचट।

बातचीत-

'हरिऔधे' के द्वारे सकारे गया, कर दाढ़ी पै फेरते वे निकले।
अवलोकत ही हाँ महाकवि को,
ठग सा गया जे न ठगे धिक से।
पढ़ने लगे चौपदे चाव से वे,
कभी झोंक भी लेते रहे चिक से।
अपना सिर मैं भी हिलाता रहा,
[illegible] रहे कविता पिक से॥

[illegible]ने लगे—आ[illegible]
कृपा 'आ[illegible] क्या।

पहन खद्दर हाथ में झोला उठा,
हम भी लीडर आज बन गये होते !!

\+ + + +

हाथ ज़ोरों से हिलाया कीजिए,
आँख से आँसू बहाया कीजिए !
मेज़ को घूँसे लगाया कीजिए !
इस तरह लीडर कहाया कीजिए !!

\+ + + +

अभी कलकी है बात, आफ़र के सबसे,
मुहल्ले में यह बात कहते थे भोला !
गुरु ! ऊ मजा का मयस्सर कोई के,
कि है लीडरी में मजा जौन होला !!

—※—

दीवाना बनाना है तो दीवाना बना दे-

आँखों में वो मस्ती है जो मस्ताना बना दे।
होठों पै हँसी वह है जो दीवाना बना दे॥
उस बुत को पकड़ कर मैं बस बन्द रखूँ दिल में
अल्लाह जो मेरे दिल को बस थाना बना दे।
काबे की हिफ़ाज़त को काफ़िर है परीशाँ अब,
डर है न कहीं बुत वो बुतखाना बना दे।
इनकार करे कैसे पीने से कोई जाहिद,
होठों को परी वह जो पैमाना बना दे।

शहनाई।

धुम धुम गूँज रही शहनाई।
हाई कवि सम्मेलन में हैं जुटे सुकवि समुदाई।
सभी काम तज आये सब घर देखन लोग लुगाई।।
लड़के दौड़े आये सुनकर, अपनी छोड़ पढ़ाई।
पूरे दस घण्टे तक दिन भर मची रही कविताई।।
नर नारी सब लेन लगे थे मुँह बाकर जमुहाई।
एक सुकवि ने बड़े जोर से कविता निजी सुनाई।।
चौंक पड़ा बालक कोठे पर आने लगी रुलाई।
मानो देखा हो नयनों से सुरपनखा की माई।।
कवि कवि के मुख ऊपर छाई रञ्जित पान ललाई।
दर्शक दर्शक ने सुलगाई निज सिगरेट सलाई।
कहैं कबीर सुनो बेटा साधो, ये दोऊ पाँड़े भाई।
कविता लता पल्लवित रक्खें रहैं सुखी सुखदाई।।

कवि-सम्मेलन या सवि-कम्मेलन

जहाँ शोर गुल खूब हो, कई रोज अविराम।
कविसम्मेलन जानिये, उस जलसे का नाम॥

जहाँ तश्तरी में धरे पान होवें।
हजारों फर्शों पर पकवान होवें।
खड़े दर्शकों के सभी कान होवें।
छिड़े हर तरह के अजब गान होवें।

कई हर्ष मानो कि बैठे हुए हों,
कभी आलसा में लपेटे हुए हों।
सभापति फर्शों पर कि लेटे हुए हों,
सभी पान सुर्ती लपेटे हुए हों॥

छड़ी बनाम सोटा

अजा की तरह पान जो हों चबाते।
कभी आँख पर से हों ऐनक हटाते।
कभी हो खड़े झाड़ हों स्पीच जाते।
कभी बैठकर व्यर्थ ही मुस्कुराते।

जो सबसे प्रथम हो थपोड़ी बजाता,
जो सबसे अधिक झूमता मुस्कुराता।
समझिये कहीं से फंसाया गया है।
यहाँ का सभापति बनाया गया है॥

बड़े बाल जिनके लटकते घने हों।
बस उन के आसन के ऊपर तने हों।
कि छवि देखकर लज्जिता किन्नरी हो,
पुरन्दर की मानों पधारी परी हो।

समझ जाइये 'कवि' कहाजाता वही है।
समय पर अदायें दिखाता वही है।
कभी मन्द गायन सुनाता वही है।
कभी जोर से चीख जाता वही है॥

जरूरी नहीं काव्यमर्मज्ञ हो वह।
भले मन्द हो, मूर्ख हो, अज्ञ हो वह।
अगर बेतुकी लाइनें जोड़ लेता,
कहेंगे उसे लोग कविता-प्रणेता॥

छड़ी बनाम सोटा

लगा नासिका पर रहे चारु चसमा।
भले ही, बला से न हो पास प्रथमा।
जरूरी नहीं पास एण्ट्रेन्स भी हो॥
न मस्तिष्कमें शेष कुछ 'सेन्स'[1] भी हो॥

उसे सर के ऊपर है झोंटा जरूरी।
उसे हाथ में एक सोंटा जरूरी!!
उसे भाँग का छानना है जरूरी।
स्वयं को सुकवि मानना है जरूरी॥

अहम्मन्यता धाम, पर जाता हो सब जगह।
कविसम्मेलन नाम, ऐसों के ही झुण्ड का॥
एक दूसरे की जहाँ, हो निन्दा का दौर।
कविसम्मेलन सब उसे, कहते कवि सिरमौर॥

वह आते हैं श्यामनारायन जो,
वही हल्दी की घाटी सुनाते हैं जो।

नोट—१ बुद्धि।

छड़ी बनाम सोटा,

जिन्हें शील्ड दिलाया था मैंने वहाँ,
अभी टेढ़ी सी टोपी लगाते हैं जो।
सदा देते किराया हैं इण्टर का,
पर यहीं हो क्लास में आते हैं जो।
यह शिष्य हैं मेरे इसे सबको,
सबसे पहिले बतलाते हैं जो॥

कवि आशु हैं मोहन, एक ही साँस में।
सैकड़ों छन्द सुनाते हैं जो।
तुम जानते होगे प्रदीप को भी,
पढ़ते पढ़ते उठ जाते हैं जो।
हैं रसाल, समीर, सरोज, मिलिन्द,
यहाँ वहाँ आते ही जाते हैं जो।
गुरु मानते हैं, तथा वे भी सभी,
कभी भूल भी काव्य बनाते हैं जो॥

क्या हो तुम ?

आज तक जाना न मैंने क्या हो तुम !
जाति की बाभन हो, या बनिया हो तुम !
पान तुमको कर रहा आँखों से हूँ,
भाँग हो, या चाय या कहवा हो तुम !
बाँध मेरा है लिया तुमने हृदय,
मुझ सरीखे साँड़ का पगहा हो तुम ?
यह गुटाई, यह कमर, ऐसा शरीर,
कौन कह सकता है अब अबला हो तुम !
बाढ़ से उमड़ी हुई दरिया हो तुम ।
रसमयी हो, सुरस हो, सुरसा हो तुम !!

छड़ी बनाम सोटा

आके सिरहाने खड़ी, झगड़ो नहीं,
खुश दर्द से मेरी तकिया हो तुम !!
बड़ा मुश्किल से हो उठी खाट से,
फँसा दलदल बीच क्या पहिया हो तुम !
चार पग चल करके फिर तुम गिर पड़ीं,
आज की ब्याई हुई बछिया हो तुम !
हो अगर चे मुस्कराती, शान्त हो,
ज्ञान होगा, फूल पर कुल्या हो तुम !
मैं न लेगुंपम हूँ तुम्हारी जानता,
ए० पी० कौंसिल का छपा परचा हो तुम !
आह तुम कितनी मधुर हो सच कहो,
कामनी का क्या पिये गुझिया हो तुम !

—*—*—*—

१ आपा

विरह का गीत—

तुम्हारी याद में खुद को बिसारे बैठे हैं।
तुम्हारी मेज पर टँगरी पसारे बैठे हैं।
गया था शाम को मिलने मैं पार्क में मिस से,
वहाँ पै देखा कि वालिद हमारे बैठे हैं !!
जरा सा रूप का दर्शन तो दे दो आँखों को,
बहुत दिनों से ये भूखे बेचारे बैठे हैं।
ये काले बाल औ इनमें गुंथे हुऐ मोती,
ये राजहंस क्या जमुना किनारे बैठे हैं ?
गया जो रात खिड़की पर तो बोल उठे अब्बा,
इधर तो आओ हम जूते उतारे बैठे हैं !

—:—:—:—

अनुभव !

जब कविसम्मेलन में डट कर,
सब कवियों को अपमान मिला ।
तब जाकर के पण्डाल बीच,
चिल्लाने का अरमान मिला ।
उठना है सोकर आठ बजे,
सोता है साढ़े पाँच बजे ॥
यह कुम्भकर्ण का नाना है नौकर मुझको शैतान मिला ।
थूकता रहा घरभर में मैं;
हो लाल उठा कमरा सारा ।
सिरहाने ही रक्खा था पर,
मुझको न कहीं पिकदान मिला ।
इनकी लम्बी मूँछें आकर,
दाढ़ी से यों हैं मिली हुईं ।
मानो अब चीनी सरहद से,
आकर के है जापान मिला ॥

कवि के दो रूप

सम्मेलन में

कविता पाठ के पूर्व—

श्री गुरुचरण सरोजरज, निजमन मुकुर सुधार।
बरनौं कविवर विमल यश, जो दायक फल चार॥

कविवर के दो रूप हैं, इसे रखो तुम याद।
सम्मेलन के पूर्व अरु, सम्मेलन के बाद॥

निर्गुण से हरि होत हैं, सगुण कहत मतिमान।
सगुण होत कवि है प्रथम, निरगुन होत निदान।

इन दोनों कवि-रूप का, वर्णन अमित अगार।
करना है उपकार-हित, निज अनुभव अनुसार॥

प्रथम रूप कविका सुन्दर अब हम तुमको दिखलाते हैं।
कवि सम्मेलन होना है जब, कवि लोग बुलाये जाते हैं।
आते हैं पत्र अनेक नेक, जिनकी रहती है मृदु भाषा:—
"आइये कृपाकर आप यहाँ, हमको है दर्शन अभिलाषा॥
सुनते आते हैं नाम सुयश, दर्शन भी अबकी हो जावे।
हे महाकवे! हार्दिक इच्छा पूरी यह सबकी हो जावे॥
स्वागत में त्रुटि होगी न एक. सब साज सजाये बैठे हैं।
आइये आप जैसे भी हो हम पलक बिछाये बैठे हैं।
बैठे हैं यहाँ प्रतीक्षा में हम मार्ग जोहते उत्तर का।
स्वीकृति आनेपर भेजेंगे हम तुरत किराया इण्टर का॥

इसी भाँति के पत्र बहु, आते कवि के पास।
उसे मनाते हैं सभी, ज्यों दमाद को सास॥
अति प्रसन्न मन सोचता, कवि पाकर ये पत्र।
'लगा फैलने सुयश मम, अत्र तत्र सर्वत्र॥"
इधर नहीं कुछ काम है, बैठा हूँ बेकार।
क्या है हर्ज चला चलूँ, अबकी बार बिहार।
किन्तु आलसी सुकवि ने, पत्र न भेजा यार!
तुरत तार शैतान सा, सर पर हुआ सवार।
मात्र यही था—देर मत करो कृपा अवतार।
आ जाओ करने सखे, हिन्दी का उद्धार॥

मनिआर्डर भी साथ ही मिला बजरिये तार।
रुपये पूरे बीस थे, हुए सुकवि लाचार॥

क्या करते लाचार हो गये।
बाँध छान तैयार हो गये।
ताँगा किया, सवार हो गये।
प्लेटफार्म के पार हो गये॥
गाड़ी आई, चढ़े चाव से।
मोमफली भी आधपाव ले।
खाने लगे, भूल दुःख दिल का।
लगे फेंकने बाहर छिलका॥

अब पहुँचे गन्तव्य थल, गाड़ी रुकी तमाम।
दीख पड़ा नर-झुण्ड से, भरा हुआ प्लेटफार्म।

है हार पिन्हाया गया इन्हें
मोटर में बिठाया गया इन्हें।
चलते थे ये सकुचाते से।
शरमाते से, बलखाते से॥

इसी भाँति कितने सुकवि, आये मय-असबाब।
एक विशाल मकान में, सबकी जुटी जमात॥
स्वागत मन्त्री जी बार बार,
जाते थे सबके द्वार द्वार।

छड़ी बनाम सोटा

कृपया चलकर जलपान करें,
कुछ चाय पियें, तब स्नान करें।
दिन भर कवि दामाद सम, यों आदर पाते।
कोई चीज हुई न कम, स्वागत की हद हो गयी।
भोजन के पश्चात् जब, बजे रात को आठ।
हुआ शुरू पण्डाल में, सबका कविता पाठ॥
पूरे एक बजे हुआ सम्मेलन यह बन्द।
घण्टों तक आवाज कवि करते रहे बुलन्द॥
अद्वितीय यह आपने देखा कवि का रूप।
अब द्वितीय कवि-रूप नवनिर्गुन लखें अनूप॥

दूसरे दिवस दस तक सोये।
सबने उठकर फिर मुँह धोये॥
मन्त्रीजीका था पता नहीं।
शायद प्रातः थे गये कहीं॥
चपरासी से कहलाने पर।
उपमन्त्री आये एक्के पर।
बोले कहिये जलपान मिला।
खोया था जो समान मिला।

मन्त्री जी हैं बीमार पड़े।
वे हो सकते हैं नहीं खड़े।

मंगवाता हूँ भोजन करिये !
कब जाती है गाड़ी कहिये !
रह जाइये न, रात की, गाड़ी से चल जाइये ।
आवश्यक यदि काम, तब न विलम्ब लगाइये ॥

नोंक झोंक—

इन मेरे कपटी मित्रों का,
व्यवहार न जाने क्या होगा !
यही रहा तो कुछ दिन में,
संसार न जाने क्या होगा !
मानते न हैं सम्पादक जी, सब लेख बटोरे जाते हैं।
सड़ियल रद्दी कूड़ा करकट कलवार न जाने क्या होगा ॥
चिकना जिसका हो कवर नहीं,
हों चित्र न सिनेमा स्टारों के।
मोटा खद्दर के चद्दर सा,
अखबार न जाने क्या होगा।

हे महानिशा के अन्धकार !

हे महानिशा के अन्धकार !
तेरा फैला सुखमय प्रसार !!
बाबू साहब खाना खाकर,
सो गये नौ बजे ही उदास ।
बीबी साहिबा सिनेमा में,
देखने गयी हैं देवदास !
सखियों के संग वहाँ बैठीं,
ऐंठी स्वरूप अभिमान लिए ।
मुँह के अन्दर हैं पान लिए,
मुँह के बाहर मुस्कान लिए !
. के लड़के देखो,

छड़ी बनाम सोटा

इस पार यहाँ बादाम मिर्च
भिजया हँड़िया को सिजवटा,
लेकर चलना है ठीक द्वन्द्व,
उस पार न जाने क्या होगा ?

हे महानिशा के अन्धकार !

हे महानिशा के अन्धकार !
तेरा कैसा सुखमय प्रसार !!
बाबू साहब खाना खाकर,
सो गये तो बड़े ही उदास ।
बीबी साहिबा सिनेमा में,
देखने गयी हैं देवदास !
सखियों के संग वहाँ बैठीं,
ऐंठी स्वरूप अभिमान लिए ।
मुँह के अन्दर हैं पान लिए,
मुँह के बाहर मुस्कान लिए !
ये कालेज के लड़के देखो,

घूरते उन्हें हैं बार बार!
हे महानिशा के अन्धकार॥

\+ + + +

पतिदेव प्रेम से पोंछ रहे,
रूठी पत्नी का वदन-प्रान्त।
वे और अधिक हैं रूठ रहीं,
वे और हो रही हैं अशान्त॥
इतने में बिजली की बोली—
से गूँज उठा घर का आँगन।
दोनों प्राणी तब चौंक सिहर,
करते कुर्सी पर आलिंगन॥
झंकृत होती उनकी वीणा,
बज उठते मन के तार तार!
हे महानिशा के अन्धकार!

\+ + + +

तेरे अन्दर खद्दरधारी,
वे विकट राष्ट्र के कर्मवीर
नेता महान् भारत भू के
लेक्चरबाजी के गुरु गम्भीर!
बारह बजते ही निकल पड़े!

छड़ी ग्रनाम सोटा

घर से पुलकित होकर महान् ।
सिरपर रेशम की टोपी धर,
मखमल के पहिने पद्‌त्रान !!
कलुआ सा बदन, छिपा करके,
भागे जाते महुवा बजार !
हे महानिशा के अन्धकार !!

\+ + + +

प्रातः घाटों पर जो बैठे ।
चन्दन घिसते थे धुँवाधार ।
होटल में वे पराडा जी अब
हैं उड़ा रहे अण्डे अपार !
मादक निवारिणी परिषद् के
मन्त्री जी मन में भरे मौज ।
पीकर ह्विस्की बिल पे करने—
में करते हैं गाली गलौज ।
आखिर उनको गिरवी रखनी,
पड़ गयी पुरानी फोर्डकार !
हे महानिशा के अन्धकार !!

\+ + + +

दिन भर श्रमिकों क्लर्कों का था,
चल रहा ठाट से कारबार !

नोट—चुकता करना

छद्म नाम सोटा

घर में, खेतों गलियों में घन,
ये सब सोये टाँगें पसार।
पर लक्ष्मीवाहन जाग रहे,
हैं निकल पड़े तजकर आश्रम!
है कहीं गटरगट की बहार,
है कहीं गूँज उठती छम छम!!
है कहीं हवन के कुण्ड सदृश
जल रहे हवाना के सिगार!
हे महानिशा के अन्धकार!

+ + + +

उपदेशक जी लौटे लागे शिक्षागृह में लेक्चर देकर!
देवी जी श्यामा भैंस तुल्य सोयीं ताने काली चादर!
साहस कर उन्हें जगाया तो बोलीं—काहे आइल तूँ घर!
काहे न रहे रह गइलऽ तूँ वेमरम पतुरियन के लेकर!
फूटल कपार ही हव हमार, नाहीं न मिलल अइसन भतार!

हे महानिशा के अन्धकार

+ + + +

कमरे में आसीन मिसेज खन्ना—
के संग युवक मिस्टर कपूर।
ढाले जाते ब्राण्डी बोतल,
हो रहे नशे में चूर चूर।

उन्हें बिठा निज मोटर में,
पहुँचाने उनके गये मकान।
मिस्टर खन्ना के बाप वहाँ,
मिल गये गेट[1] पर, खिन्न वदन।
हैं फाँक रहे सुर्ती दोनों—
को झाँक रहे चश्मा उतार।
हे महानिशा के अन्धकार!

---

[1] फाटक

गोरखपुर।

भन भन भन का निनाद छन छन जहाँ
घन की घटा से भी घनावली सघन है।
कार कतवार की बहार सड़कों, पै दिव्य,
बेशुमार बाजों का अजीब अञ्जुमन है।
दस रुपयों का वह बेचते दुअन्नी पर,
ऐसे मोलभाव का महान मधुवन है।
वृन्दावन मच्छरों का, मक्का यह मक्खियों का,
कक्का ! यह यू० पी० का अनोखा अपदमन है।

प्रेम की यह बाट !

री सखि ! प्रेम की यह बाट !
तुम यहाँ से कोस भर पर
मैं खड़ा इस विजन वन में।
साइकिल पंक्चर हुई है,
है नहीं उत्साह मन में।
पास में पैसा नहीं है।
है न इक्के का ठिकाना।
थक गया हूँ बेतरह मैं,
है अभी दो मील जाना।
और बायाँ पैर जूते ने—

कहीं पलान मोटा

लिया है फाट—

री सखि, प्रेम की यह बाट।

\+ + + +

अगर आऊँ भी यहाँ तक,
तुम न बोलोगी सहेली।
मुँह फुलाये ही रहोगी,
मुँह न खोलोगी सहेली !!
मैं मनाता ही रहूँगा,
तुम झिड़कती ही रहोगी।
प्रेम की सुन दिव्य बातें,
तुम भड़कती ही रहोगी॥
पर न मैं यह सब सहूँगा,
हूँ न जाहिल जाट री
सखि प्रेम की यह बाट,

\+ + + +

जानता हूँ तुम मुझे
अब तक नहीं हो जान पायी !
इस हृदय के प्रेम को,
प्रेयसि नहीं पहिचान पायी।
आह ! आखिर काल कैसे,

तुम बनोगी वीर बामा !
है समझ रक्खा मुझे
तुमने कुली या खानसामा।
और अपने को समझती,
हो सदा ही लाट।
री सखि ! प्रेम की यह बाट,

\+ + +

याद है वह निशा ? जब
मैंने तुम्हारे बाल आली।
बाँध दी थी खाट से
तुम जाग कर दे उठी गाली !!
और तुम भी तो चली थी,
इसी भाँति मुझे छकाने !
पर अमित निरुपाय होकर,
तुम लगी थी मुस्कुराने !!
वहाँ बाल बड़े तुम्हारे,
मैं यहाँ सल्वाट।
री सखी ! प्रेम की यह बाट !!

—०—:o:—०—

गोरखपुर-गरिमा

सील है यहाँ न, अति सील है यहाँ पै पुनि,
पानी है न नेक अरु पानी जुरयो जुर है।
मौजभाव है न यहाँ, मौजभाव ही यहाँ है,
बाढ़ है न यहाँ सदा बाढ़ ही प्रचुर है।
अघहमन वारे नहीं अघहमन वारे यहाँ;
धूम है न कोई, धूम ही की सदा धुर है।
गोरखों का धन्धा नहीं, गोरखों का धन्धा यहाँ,
गोरखों का पुर है, न गोरखों का पुर है।

हे खरबूजों के देश जाग

ओ शहर, घहर, उठ साभिमान,
पण्डित जी की चुटिया समान।
क्यों सोया है अजगर समान।
चल उछल कूद वानर प्रमान !!

तेरी छाती पर किसी समय,
छम छम बजती थी पायजेब।
तेरी सन्तानें मोटी थीं,
खाकर अनार अंगूर सेब !!

छड़ी बनाम सोटा।

हा आज वहीं खुमचे वाले
हैं बेंच रहे रेवड़ी चूड़ा!
कीचड़ से गीली सड़कों पर,
है आज पड़ा सूखा कूड़ा॥

यह वही देश है जहां कभी
कनकौवे उड़ते धुंआधार।
प्रातः सन्ध्या गलियों तक में
अखबार बिक रहे हैं अपार॥

खेलते जहां के वीर पुत्र
शतरंज दिवस भर रात रात।
गूंजती जहाँ की गलियों में,
ध्वनि भी बस केवल मात मात॥

हां! आज वहीं की गलियों में
लेक्चरबाजी की धूम धाम।
गलियों तक में सैलून खुले,
कुर्सी पर बैठे हैं हजाम॥

ओ देश दुपल्ली टोपी के,
तेरी छाती पर लगा हैट!
घूमते आज कालेज स्टुडेण्ट,
जिनके शरीर में नहीं कैया।

हाँ, यहीं पचासी के बुड्ढे,
सुरमा से रंजित किये नयन !
हुक्का की नली दिये मुँह में,
करते रहते थे दिव्य हवन !

अब वहीं नौ बरस का लड़का,
चश्मा से आँखें किये चार।
पोपले बदन फूँक रहा,
फक् फक् फक् फक् फक् फक् सिगार !!

लेते चुम्बन थे जहाँ युगल,
लेने हैं चले सुराज हाय !
कब्रों पर आह आशिकों के
फिरते एम० एल० ए० आज हाय

थे जहां नवाबों के नाती,
घूमते मस्त कर सुरा पान।
हाँ आज वहीं ये देशभक्त,
गाते फिरते राष्ट्रीय गान।

साकी ला इधर जाम भर दे,
थी जहाँ गूंज सन्ध्या सबेर।
दोनों महसें विज्ञ पर अनेक,
अब वहीं होगया हेर फेर।

छड़ी बनाम सोटा

रजनी में जिन स्थानों में,
तुर्कों से अपना छिपा गात।
जारों के हित अभिसार निरत
बेजार घूमती बेगमात।

हा, वहीं उन्हीं स्थानों में
सन्ध्या के सात बजे विलोल!
सहपाठीगण से करती हैं
कालेज-कन्याएँ कलोल।

उनके सर से सरकी साड़ी,
ऊँची एँड़ी के पदत्राण!
दिखलाते हैं दर्शकगण को,
भारत भविष्य जाज्वल्यमान!!

उफ़! जहाँ भृत्य अवलम्ब बिना,
पाजामा पहिना नहीं चाह!
हो गया शत्रुओं के अधीन,
अभिमानी वाजिद अली शाह!

अब वहीं रईसों के लड़के,
निज संग बिठाकर फिल्मस्टार!
होटल तक आते जाते हैं,
खुद हाँक रहे हैं फोर्ड कार!!

लखनऊ ! काम की रंगभूमि !
सुर्ती किमाम की रंगभूमि !
हो गयी जाम की रंगभूमि !
साहब सलाम की रंगभूमि !

रसगुल्ला का सीरा जो था।
वह आज हो गया हाय ! राब
सिक्का पलटा, उलटा विचार,
इक्का है हाँक रहे नवाब !!

ओ नगर, जाग तज दे निद्रा,
पी चाय ! हटे सुस्ती अपार !
ले ओवल्टीन, हो जा प्रबुद्ध,
दे फूँक हवाना का सिगार !!

कर दे प्रचण्ड रेडियो-नाद !
सब सिहर उठें सिनेमास्टार !
चल पड़ें होटलों से सत्वर,
मेम्बर असेम्बली के अपार !!

फिर होवे तू सौभाग्य भूमि,
फिर होवे तू आराम नवाब !
फिर यहाँ मिलें दो अधर युगल,
फिर फिरे दुरा, सीखे तू ढर !!

छड़ी बनाम सोटा

लखनऊ, चेत लखनऊ, चेत,
उठ जाग, प्राप्त हो तुम्हें विजय !
फिर ठुमकें तबले औ मृदंग,
फिर हो भाड़ों का भाग्योदय !!

ओ मतवालों के देश जाग !
ऐंठे ढालों के देश जाग !
ओ खरबूजों के देश जाग !
ओ भड़भूजों के देश जाग !!

मेरे मामा, मेरे मामा !!

मेरे मामा ! मेरे मामा !!
आदमी नहीं है पाजामा !!

गतवर्ष हुए एण्ट्रेन्स पास,
इस साल खेल रहे ताश !
अपने को समझें वाचस्पति,
विद्वानों के प्रति सोपहास !!
सबसे करते हैं हंगामा !
मेरे मामा, मेरे मामा !!

डाक्टरी आजकल करते हैं,
होमियोपैथिकी चरते हैं !

सारी दुनियाँ की बीमारी
होकर सत्वर से हरते हैं।
अपने को समझें यंगामा।
मेरे मामा ! मेरे मामा !!

है बैंत सरीखे कृशित गात !
हैं पचा न सकते दाल भात !!
जाड़े में नहीं नहाते हैं !
गर्मी में रोये जाते हैं !
पर अपने को समझें गामा !
मेरे मामा ! मेरे मामा !!

\+ + + +

मामी हथिनी सी मोटी हैं।
यद्यपि उनसे अति छोटी हैं।
है कभी न तन में पीर हुई।
है रहा सदा ही मेर सोर !
उनसे अच्छी उनकी मामा !
मेरे मामा ! मेरे मामा !!

अनुरोध।

तजो रे मन क्लब विमुखन को संग!
इनके संग किये से प्यारे होत सभ्यता भंग!
जो न जाय क्लब नितप्रति प्रिय
सो अति मलिन अभंग।
जाहिल जाट चपाट गवाँई,
पड़ी बुद्धि में भंग!
क्लब महिमा गावहिं कवियित्री भी,
सिनेमा स्टार तरंग।
जहाँ मिलैं सुमुखिन को दर्शन,
परस मिलै मृदु अंग!!
कहत कबीर सुनो भेड़ा साधो,
क्लब में सब सुख-ढंग!!

गान ।

पान खाने का मजा, जिसकी जबाँ पर आ गया !
मुक्त जीवन हो गया, चारो पदारथ पा गया !!
डालकर सुर्ती जरा सी, और कत्था सेर भर,
थूक कर घर भर सभी, यह लपट आज बना गया !!
पहिन कुर्ता सिल्क का, वे पान मुंह में रख रहे,
पीक फौरन चू पड़ी, कुर्ता समस्त रँगा गया !!
लूटा मजा मास्टर ने है, जो है चबाना पान को,
कापियों पर इंक के बदले में पीक चुवा दिया ॥

कुछ इधर उधर की।

तालीम बेहयाई की पच्छिम ने खूब दी,
अफसोस हिन्द आज तक नंगा नहीं हुआ।
मजहब के लीडरों को सताता है गम बहुत,
बकरीद बीत भी गयी, दंगा नहीं हुआ॥

\+ + + +

पट्टाभि सीतारामैया का नाम है बड़ा।
मिस्टर सुभाषबोस का भी काम है बड़ा!

\+ + + +

वे नाम ही के फेर में मदहोश हो गये।
प्रेसिडेण्ट इधर देश के औ बोस हो गये!!

शिक्षा सचिव ने देश को साक्षर बना दिया,
पण्डित बनेंगे गांव के सब चपठ बुद्धू।
बुढ़िया के संग रात में ढेबरी को बारकर,
बुड्ढे पढ़ेंगे प्रेम से कक्का किस्को लुक्कू॥

\+ + + +

वन्दना।

वन्दौं कांगरेस के नेता !
आज तुम्हारे हाथ देश की गुद्दी और परेता।
तुम असेम्बली-चली वीर-विक्रम हो विशद विजेता !
होते जो न, कौन पब्लिक को यों प्रसन्न कर देता।
श्यामगात पर यों खद्दर, जैसे कादे पर रेता।
मुच्छविहीन वदन अति राजत है सिगरेट समेता।
तव पालिसी निहारि हारि बैठे हैं सतयुग त्रेता।
वन्दौं कांगरेस के नेता !!

महाकवि साँड़ ।

यदि आपकी पत्नी ने अपने जूतों पर आपसे पालिश करवा-कर तथा आपको अपने घर में अकेले छोड़ अपने किसी मित्र के साथ सिनेमा हाउस का मार्ग पकड़ा हो और आप मन मारे उदास बैठे हों तो हमारी प्रार्थना है कि उस समय आप "महाकवि साँड़" नामक पुस्तक के पन्ने उलटें। आपकी मानसिक चिन्ता हवा हो जायगी। अथवा यदि आपकी श्रीमती ने आपके कानून भंग करने और आपके विरुद्ध असहयोग आन्दोलन छेड़ने की धमकी दी हो, तो आप यह पुस्तक उनके करकमलों में रख दीजिए और वह हँसते हँसते लोट-पोट होकर आपसे स्थायी सन्धि कर लेंगी। यदि आपका मेजुएट पुत्र फैशन के पीछे पागल होकर उच्च आदर्शों से पतित हो गया हो तो यह पुस्तक उसे दीजिये, वह हँसी के साथ ही उपदेशों का ऐसा अटूट भण्डार इस पुस्तक से पावेगा, कि उसका हृदय और मन स्वच्छ हो उठेगा। यदि आपके छोटे छोटे बच्चे ऊधम मचाते फिरते हों, तो यह पुस्तक उन्हें थमा दीजिये, वे इस पुस्तक से गुड़ चींटे की भाँति चिपके रहेंगे। हमारा दावा है कि यदि आप न हँसने के के लिये कसम खाकर भी बैठे हों तब भी इस पुस्तक को पढ़कर आपको अट्टहास करना ही पड़ेगा। पुस्तक के लेखक महाकवि 'चोंच' जी की देश व्यापिनी ख्याति ही इसकी सुन्दरता का सबसे बड़ा प्रमाण है। आपने हास्यरस के अनेक ग्रन्थ पढ़े होंगे, एकबार इसे भी पढ़ देखिये। भारतवर्ष के सभी चुने हुए विद्वानों

श्यकता नहीं। 'महाकवि साँड़' और 'पानी पाँड़े' के पाठकों को
तो और भी अच्छी तरह यह बात मालूम है। यदि आपको
खुलकर भूख न लगती हो और खाया हुआ अन्न न पचता हो
तो तुरन्त ही सब प्रकार के पाचक चूर्णों की शीशी को किसी
गड्ढे में बहाकर 'गुरु घण्टाल' का पाठ आरम्भ करिये। फिर
देखिये कि आपका चेहरा कैसा प्रफुल्लित हो जाता है। पुस्तक
छपकर प्रेस से निकलते ही इसकी धूम मच गयी है। १६० पृष्ठों
की कहानियों और कविताओं से युक्त सचित्र और सजिल्द पुस्तक
का मूल्य केवल १) रु० मात्र

पं० शंकरलाल तिवारी 'वेढब' की लौह लेखनी से लिखित–

भारत सन् ५७ के बाद

भारतीय क्रान्ति का अमर इतिहास-देश की स्वतन्त्रता के
लिये अपने प्राणों को हथेली पर रख स्वतन्त्रता के पुजारियों ने
किस प्रकार फाँसी, कालेपानी, निर्वासन और जेलकी कठोर दण्ड-
आज्ञा को हँसते-हँसते स्वीकार किया, इसका ज्वलन्त उदाहरण
इस पुस्तक के पन्नों में देखिये। इसे पढ़कर आप की सुषुप्त
नाड़ियों में फिर से उष्ण रक्त प्रवाहित होने लगेगा। साथही साथ
लाहौर षड्यन्त्र, काकोरी षड्यन्त्र और बंगाल के षड्यन्त्रकारियों

के अमर जीवन, उनकी अटल देशभक्ति, उनके अपूर्व त्याग की करुण कहानियाँ पढ़कर आप के रोंगटे खड़े हो जाँयगे। हमारी कांग्रेस सरकार की कृपा से ही ऐसी पुस्तक प्रकाशित हो सकी है। इसमें फांसी और निर्वासन का दण्ड पाने वाले शहीदों के चित्र भी आप को देखने में मिलेंगें। आज ही आर्डर भेजकर मँगालें वरना पीछे पछताना पड़ेगा। सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥)

संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ।

संसार का ऐसा कोई देश नहीं, जिसने पराधीनता के बन्धन से मुक्त होने का प्रयत्न न किया हो। इस प्रयत्नमें आजादीके दीवानों ने कैसी कैसी भीषण और रोमांचककारी विपत्तियों का सामना किया और किस वीरता के साथ अपने प्राणों को हथेली पर रख-कर स्वतंत्रता की बलिवेदी पर आहुतियाँ दे दीं, इसका रक्तप्लावित इतिहास पढ़कर आप रोमांचित हो उठेंगें। इस पुस्तक में संसार के छोटे-बड़े पराधीन देशों की स्वतन्त्रता-प्राप्ति की रक्षा में मर मिटने की मनोहर कथायें संगृहीत हैं। पुस्तक को एकप्रकार का संसार का संक्षिप्त इतिहास कहा जाय तो कोई अतिशयोक्ति न होगी।

पुस्तक के प्रत्येक पृष्ठमें आप को मिलेगा—पद पदपर खूँरेजियाँ, देश-निर्वासन और फांसी के दिल दहलाने वाले दृश्य—भीषण अग्निवर्षा के बीच देश के दुलारों का पतंग की भाँति जूझ मरना आदि।

भारतीय नवयुवकों में स्वतंत्रता का मंत्र फूंक देने में यह पर्याप्त सहायता देगी। सचित्र पुस्तक का मूल्य १॥)

हमारी प्रकाशित पुस्तकें

इतिहास

२॥) वीर दुर्गादास
१॥) संसार की भीषण राज्यक्रान्तियाँ
२) झांसी की रानी
१॥) भारत सन ५७ के बाद
१॥) मेवाड़ का इतिहास
१) मिश्र की स्वाधीनता का इतिहास

जीवन चरित्र

१) अमरसिंह राठौर
१) सम्राट अशोक
१) प्रतापी आल्हा और ऊदल
१) देश के दुलारे
१) महाराणा प्रताप
१) पृथ्वीराज चौहान
१) वीर मराठा
१) हैदर अली
१) छत्रपति शिवाजी
१॥) संसार के राष्ट्र-निर्माता

उपन्यास

३) विप्लवी वीरांगना

१।।।) रहमदिल डाकू

१।।।) अपराधिनी

१।।।) हाहाकार

१।।) नदी में लाश

१।।) प्रेम के आँसू

२।।) जीवन का शाप

१।।) मायावी संसार

१।) प्यासी तलवार

१) होटल में खून

१) प्रेमका पुजारी

१) मजदूर का दिल

हास्यरस

१।) महाकवि साँड़,

१) पानीपाँड़े

१) टालमटोल

१) लड्डी बनाम सोंटा

१) मेरे राम का फैसला

१) लेखक की बीबी

१) मिस्टर तिवारीका टेलीफोन

।।।) मेरी फजीहत

नवयुवकोपयोगी

१।।) स्वास्थ्य और व्यायाम पृष्ठ संख्या ८०

१।) सरल संस्कृत प्रवेशिका पृष्ठ संख्या ४५०

१) सफलता के सात साधन

१) हमारा जीवन सफल कैसे हो ?

।।।) शान्ति की ओर

।) कहावतें

आध्यात्मिक

३) उपनिषत्समुच्चय पृष्ठ सं० १२५०

।।।) शुद्धि सनातन है

।।) पूर्णिया शास्त्रार्थ

।।=) वैदिक वर्णव्यवस्था

।।।) मेरे देवता

मिलने का पता:—

चौधरी एण्ड सन्स,

बनारस सिटी ।